

**TEXT CROSS
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180049

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP- 391-29-4-72-10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H82** Accession No. **H4320**

B57B

Author **भट्ट, धनंजय 'स २००५'**

Title **भट्ट नाटकावली स २००५**

This book should be returned on or before the date last marked below

प्रकीर्णक पुस्तक-माला

भट्ट-नाटकावली

स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण जी भट्ट-कृत तीन सुंदर
और शिक्षाप्रद नाटक

संपादक
श्री धनंजय भट्ट 'सरल'



सं० २००४ वि०

नागरीप्रचारिणी सभा काशी

मुद्रक : पं० रामभरोस मालवीय, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।

प्रथम संस्करण]

२००९ वि०

[मूल्य रु० १०/-]

वक्तव्य

हिंदी में नाटक का लिखा जाना भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के समय से शुरू हुआ है। इसके पहले जो नाटक लिखे जाते थे वे संस्कृत नाटकों के ढंग पर होते थे। उनकी भाषा सानुप्रास एवं पद्यमय रहती थी और उनमें पात्र-प्रवेशादि भी नहीं होते थे। नाटक के ढंग से “नहुष” नामक हिंदी में सब से पहला नाटक लिखा गया। इसे भारतेंदु जी के पिता कविवर गिरधरदास ने लिखा था। इसके बाद राजा लक्ष्मणसिंह ने “शकुंतला” नामक दूसरा नाटक लिखा। फिर भारतेंदु जी ने “विद्यासुंदर” नाटक लिखा और इस प्रकार एक-एक करके उन्होंने कुल १६ नाटक लिखे। भारतेंदु जी से प्रभावित होकर राय देवीप्रसाद ‘पूर्ण’, पं० बदरीनारायण चौधरी, पं० प्रतापनारायण मिश्र, बाबू राधा-कृष्ण दास, पं० अंबिकादत्त व्यास, बाबू श्रीनिवास दास आदि लेखकों ने भी दो-दो, तीन-तीन नाटक लिखे।

उसी समय में भारतेंदु जी से ही उत्तेजना पाकर खड़ी बोला हिंदी के जन्म दाताओं में अपना विशेष स्थान रखनेवाले स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट ने लगभग बीस नाटक लिखकर हिंदी में इस कमी को पूरा किया और उस समय के हिन्दी साहित्य को चार चाँद लगा दिए। हिन्दी को सर्वांग-पूर्ण बनाने की धुन भट्ट जी को हमेशा लगी रहती थी। उन्होंने नाटक, उपन्यास, इतिहास, निबन्ध, जीवन-चरित आदि सभी विषयों में लिखकर हिन्दी-साहित्य-भंडार को भरने में भरसक प्रयत्न किया। भट्ट जी ने अपनी रचनाओं के संबंध में स्वयं लिखा है—“इस बत्तीस साल की ‘हिन्दी-प्रदीप’ की जिल्दों में कितने ही उत्तमोत्तम नाटक, उपन्यास तथा अन्यान्य प्रबंध भरे पड़े हैं।

वे सब यदि पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिए जायँ तो हिंदी-साहित्य के अंग का कुछ न कुछ कोना अवश्य भर जाय ।”

भट्ट जी के लिखे नाटकों में से कुछ ये हैं—शर्मिष्ठा, पद्मावती, चन्द्रसेन, मच्छकटिक, किरातार्जुनोदय, पृथु-चरित्र, शिशुपाल बध, नल-दमयंती, दमयंती-स्वयंवर आदि । इनके अतिरिक्त इन्होंने शिक्षादान, आचार-विडम्बन, नई रोशनी का विष आदि प्रहसन भी लिखे हैं । ये सब अभी तक पुस्तकाकार नहीं छपे हैं । अब तक इनका लिखा केवल एक नाटक प्रकाशित हुआ है जिसका नाम दमयंती-स्वयंवर है । यह सुंदर नाटक हाल ही में हिंदी-साहित्य-समेलन से प्रकाशित हुआ है । इनके लिखे दो नाटक और भी प्रकाशित हुए हैं जिनके नाम ‘वेणु-संहार’ और ‘जैसा काम वैसा परिणाम’ है । ये दोनों नाटक अप्राप्य थे इसलिये इस पुस्तक में संकलित किए गए हैं ।

इस नाटकावली में इनके कुल तीन नाटक हैं । पहला ‘वृहन्नला’ है । यह संवत् १९८१-८२ में ‘हिंदी-प्रदीप’ में छप चुका है । उसी से यहाँ लिया गया है । दूसरा ‘वेणु संहार’ है । इसका पहला संस्करण छपते ही समाप्त हो गया था । तीसरा ‘जैसा काम वैसा परिणाम’ भी लोगों ने इतना पसंद किया कि ‘हिंदी-प्रदीप’ में कई बार छपा । बाद में यह ‘शिक्षादान’ में मिलाकर पुस्तकाकार भी छापा गया । यह नाटक भी छपते ही हाथों-हाथ बिक गया ।

आशा है हिंदी-संसार इस नाटकावली का भी समुचित आदर करेगा ।

धनंजय भट्ट ‘सरल’

अहियापुर—इलाहाबाद ।

३० अगस्त, १९४७

सूची

नाम	पृष्ठांक
वृहन्नला ...	६
वेणु-संहार	५५
जैसा काम वैसा परिणाम	८३

वृहन्नला

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

--

- बृहन्नला ... महाराज विराट् के सेवक छद्मवेशी अर्जुन ।
 उत्तर ... विराट् के कुमार ।
 द्रोण ... कौरवों के आचार्य ।
 भीष्म ... कौरवपक्ष के सेनानी ।
 कर्ण ... पांडवों के अग्रज, जो कौरव-पक्ष में थे ।
 अश्वत्थामा ... कौरवपक्ष के सेनानी ।
 दुर्योधन ... कौरवों के महाराज ।
 विराट् ... विराट्-नगर के महाराज ।
 कंकभट ... महाराज विराट् के सभासद छद्मवेशी धर्मराज
 युधिष्ठिर ।
 नकुल } ... अर्जुन के अनुज ।
 सहदेव }

- वल्लभ ... महाराज विराट् के सूपकार छद्मवेशी भीम ।
 द्वारपाल, दूत, ब्राह्मण, सिपाही आदि ।

स्त्री-पात्र

- उत्तरा ... महाराज विराट् की राजकुमारी ।
 सैरंध्री ... छद्मवेश में पांडवों की पत्नी द्रौपदी ।
 मधुमती ... दासी ।
 रानी ... महाराज विराट् की पत्नी ।

परिचारिका इत्यादि ।

प्रथम अङ्क

प्रथम गर्भाङ्क

(सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—नदीजलङ्केशयनारीकेतुः नागाह्वयोनामनगारिसूनुः ।
एषोङ्गनारूपधरः किरीटी जित्वावयं नेव्यतिचाद्गावः

(स्थान—राजभवन मन्त्रिकट राजपथ)

उत्तर—(वृहन्नला से) जल्दी चल, जल्दी चल, कौरवों को समुचित दण्ड बिना दिए आज हम न फिरेंगे; इन दुष्टों का इतना साहस कि हमारे बाप का सब गोधन हरे लिए जाते हैं ।

वृहन्नला—हाँ, हम आ तो रहे हैं ।

(दोनों थोड़ा चलकर)

उत्तर—(सब ओर देख) ऐं यह कहाँ तू हमे ले आया ? अरे ! देख कैसा भयंकर समुद्र उमड़ा चला आता है; उः कैसे भयंकर शब्द से गरज रहा है ।

वृहन्नला—कुमार, यह समुद्र नहीं है ।

उत्तर—ऐं क्या कहता है, समुद्र नहीं तो फिर क्या है ?

वृहन्नला—राजकुमार, यह समुद्र समान कौरवी सेना है और यह शब्द कौरवों का सिंहनाद है ।

उत्तर—नहीं, नहीं, तू नहीं जानता यह समुद्र ही है ।

वृहन्नला—कुमार, मैं भलीभाँति जानता हूँ यह कौरवों की सेना ही है ।

उत्तर—वृहन्नला, चल चल, लौट चल; इस असंख्य सेना-समूह में अकस्मात क्यों रथ लाया ? जिन महारथियों का नाम सुन देवेन्द्र भी भयभीत हो जान छिपाते हैं उनके साथ हम लोग कहाँ से इतना साहस कर सकते हैं कि युद्ध करें । हाय ! अम्मा ! तुम कहाँ हो ? चलती बार तुमने हमें बहुत मना किया था पर हमने अहंकार में आय तुम्हारी बात पर जो ध्यान न दिया उसी का फल पाया । अब क्या उपाय करें, अरे वृहन्नला जल्दी चल; ऐसा न हो कि कौरवों की सेना कहीं हमें देख ले ।

वृहन्नला—(स्वगत) आते समय स्त्रियों के बीच इसने कैसा सिंहनाद किया था मानो कौरवी सेना को क्षण भर में उच्छिन्न कर डालेगा । अब देखते हैं तो भय से त्रस्त इसका मुख सूख रहा है, किचकुर बहा आता है । अब यहाँ आकर भाग जाना भी उचित नहीं इससे किसी प्रकार इसे रोक रखना चाहिए (प्रकाश) कुमार, आप यह क्या करते हो ? क्षत्रियों के कुल में जन्म लै यह आपको नहीं शोभा देता; दृढ़ता रखिए, इतना डरते क्यों हो ?

उत्तर—वृहन्नला, तू कुछ जानता भी है इतनी बड़ी सेना और प्रधान प्रधान वीरों को देख कौन ऐसा बीर-मानी इस धरातल पर होगा जो न डरै और धीरज गहे रहै ।

वृहन्नला—कुमार, युद्ध करने को आए हो इतना भयभीत हो अब कादर बनना वीरों का काम नहीं है । पहले ही से आपको इसका भार नहीं लेना उचित था । अब तो

आ ही चुके हो जो कुछ तुमसे पुरुषार्थ हो सके वह कीजिए ।

उत्तर—वृहन्नला, लै जाने दे गौओं को । जीते रहेंगे तो फिर सब हो जायँगी । तू रथ फेर, भाग चलै किसी तरह यहाँ से ।

वृहन्नला—यह हमसे कभी न होगा । आपको अवश्य लड़ना पड़ेगा चाहे जो हो ।

उत्तर—वृहन्नला, छोटी दूटी डोंगी से कोई महासागर को पार कर सकता है । किम्बा मृत्यु के साथ सिंहनाद कर कोई लड़ सकता है । अथवा विषधर भयानक सर्प के मुख में हाथ डालना क्या सहज काम है । ससार में लोग हमें हसैंगे तो कुछ डर नहीं तू चल यहाँ से ।

वृहन्नला—राजपुत्र, हमसे तो ऐसा कभी न हांगा; इस तो नहीं भाग सकते । रथ शत्रुओं के सामने लिए चलते हैं फिर देखा जायगा ।

उत्तर—अरे तेरी क्या ? तू तो नपुंसक हिजड़ा हई है । तेरा जीवन विडम्बना मात्र है । जिया तो क्या मर भी गया तो कौन सी हानि है । तू तो जीते ही मृतक तुल्य है । तुझे मरने से क्या डर । (रोता हुआ भागता है) हाय ! तेरे कारण मेरा जी जाया चाहता है ।

वृहन्नला—(उसका केश पकड़ रोकता है) कुमार, कुमार, ठहरो, ठहरो । [दोनों गए]

द्वितीय गर्भाङ्क

(स्थान—श्मशान में शमीवृक्ष)

वृहन्नला—जान पड़ता है आप युद्ध करने में अत्यंत अपदु हैं ।

उत्तर—अरे, इस प्रकार के युद्ध करने में हम क्या सभी अपदु होंगे ।

वृहन्नला—अच्छा, तो अब आप एक काम करो। इस वृक्ष पर गाण्डीव धनुष लटकी हुई है जाओ, उसे उतार ले आओ।

उत्तर—आज कैमी कुसाइत में घर से निकले थे; इस वृक्ष में तो एक शव का शरीर बँधा हुआ है हम राजपुत्र होकर उसे कैसे छुएँ।

वृहन्नला—कुमार, हम क्या तुम्हारे अशुभचिन्तक हैं। निस्सन्देह इसके बीच गाण्डीव धनुष है।

उत्तर—अच्छा, तो हम इस पेड़ पर चढ़ते हैं। तुम देखते रहो शत्रु की सेना का यहाँ कोई न आ जाय।

वृहन्नला—कुछ डर नहीं है। तुम जाकर लाओ धनुष, तुम्हारे पाम कोई शत्रु न जा सकेगा।

उत्तर—(पेड़ पर चढ़ता हुआ) (स्वगत) उः किमाश्चर्य यह क्या धनुष है ? ऐसी अद्भुतचन्द्राकार प्रभा हमने तो कभी नहीं देखा मानों सैकड़ों मणि चमक रहे हों (डर कर) महाशय, यहाँ धनुष कहाँ है ? ये तो फनदार साँप पेड़ में लिपटे हुए जान पड़ते हैं। वृहन्नला, हम तो गिरा चाहते हैं। अरे, हमें सम्हाल रं सम्हाल !

वृहन्नला—आः तुम कैसे आदमी हो ? साँप यहाँ कहाँ से आया ? तुम्हें केवल भ्रममात्र है।

उत्तर—वृहन्नला, यह महद्भुत सप्ततान प्रमाण, मणिरत्न विभूषित, जिसके पृष्ठ-देश में राजहंस का चित्र बना है, रिपुकुलध्वंसकारी, अग्नि समान तेजवान, ऐसा धनुष तो हमने कभी नहीं देखा सुना। जान पड़ता यह किसी महा-पुरुष का धनुष है और इस चमड़े की थैली में बँधे पाँच शङ्ख दिखाई देते हैं ये किसके होंगे। (शंखों का उत्तोलन) उः इसका उत्तोलन हमारी शक्ति के बाहर है।

वृहन्नला—यह जो नीलोत्पल समान धनुष देखते हो इसका नाम त्रैलोक्य विजय है। चौंसठ वर्ष पर्यन्त प्रजापति इस धनुष को धारण कर जलपति वरुण को दिया; तत्पश्चात् वरुण ने अग्नि को दिया; अग्निदेव ने खाण्डव बन-दहन के समय अर्जुन को दिया था।

उत्तर—वृहन्नला, तूने इन सब बातों को किस तरह जाना ?

वृहन्नला—कुमार, वह अर्जुन हमी हैं।

उत्तर—(आश्चर्यित हो वृद्ध से नीचे उतरता हुआ) आं आं क्या कहते हो ! अ-अर्जुन तु-तुम्हीं हो, ह-हमें इस बात का विश्वास नहीं होता।

वृहन्नला—कुमार, तुम निश्चय जानों अर्जुन हमी हैं।

उत्तर—(अचम्भित हो) क्या सचमुच अर्जुन तुम्हीं हो ? अच्छा, अर्जुन के दस नाम तो कहो।

वृहन्नला—(हँसकर) अर्जुन, फाल्गुण, सव्यशाची, धनञ्जय, किरीटी, वोभत्म, श्वेतवाहन, विजय, कृष्ण, जिष्णु।

उत्तर—यह तो हुआ किन्तु किस कारण कौन नाम अर्जुन का पड़ा यह बतलाओ तो हमें विश्वास हो नहीं तो हम समझते हैं कि तुम अर्जुन के साथ बहुत दिन तक रहे हो इससे उनका सब वृत्तान्त जानते हो पर अर्जुन नहीं हो।

वृहन्नला—आपको हमारी बात का विश्वास क्यों नहीं होता; हम शपथ कर कहते हैं कि अर्जुन हमी हैं।

उत्तर—अच्छा, तुम अर्जुन हो तो युधिष्ठिर, भीम, इत्यादि कहाँ गए।

वृहन्नला—(हँसकर) जो कङ्क नाम तुम्हारे पिता के सभासद हैं वही धर्मराज युधिष्ठिर हैं। जो तुम्हारे घर के रसोईदार हैं जिनका नाम बल्लव है वही भीम हैं। जो सैरंध्री है

वही द्रोपदी हैं। नकुल तुम्हारे घर के अश्वपालक हैं और सहदेव गोरक्षक हैं।

उत्तर—(क्षणिक मुग्ध-सा हो साष्टांग प्रणाम-पूर्वक हाथ जोड़)
हे वीरवर, हमें क्षमा करो; हमने बिना जाने तुम्हारे साथ
बड़ा अन्याय किया है। वीरधुरीण उन सब बातों को आप
भुला कर हमारा अपराध क्षमा करो क्योंकि उन्हें यदि
आप स्मरण करावोगे तो फिर हमारा निस्तार कहाँ होना
हे। हम आपके पादपद्म की शरण लेते हैं हमारी रक्षा
कीजिए। हम तुम्हारे दासानुदास हो चिरकाल लों तुम्हारी
सेवा करेंगे।

अर्जुन—हमने तुम्हारी निष्कण्ठ चित्तवृत्ति से जान लिया
कि तुम हमसे सच्ची प्रीति रखते हो। तुम धनुष लाकर
शीघ्र चलो। आज हम समस्त गोधन मोचन कर
कौरवी सेना को अग्निशस्त्र से जला देंगे; किन्तु तुम
निडर रहना तुम्हारे डर जाने से हमारा प्रयास फिर
सब व्यर्थ होगा।

उत्तर—महाभाग, हमने अब तुम्हें अच्छी तरह जान लिया। अब
इस समय यदि स्वयं काल भी अपनी कराल मूर्ति धारण
कर प्रकट हो तो भी हम न डरें आज्ञा कीजिए क्या करें।

अर्जुन—अब इस समय तुम हमारे रथ के सारथी हो। देखो, हम
कौरवी सेना में कैसा कौतुक करते हैं।

उत्तर—वीरवर, आज आपके आखण्डल समान प्रताप के बल
यह समस्त मही-मण्डल हम वृणवत समझते हैं। विष्णु
के सारथी जैसे दारुक और इन्द्र का मातली है वैसे ही
हमें आप अपना सारथी समझिए यह धनुष लीजिए

(धनुष और बाण प्रदान)

अर्जुन—लाओ, (अस्त्र ग्रहण) अच्छा चल। (दोनों गये)

तृतीय गर्भाङ्क

(स्थान—कौरवी सेना की छावनी)

(भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, अश्वत्थामा आदि बैठे हुए)

द्रोण—(भीष्म से) गांगेय देखो ! आज कैसे-कैसे उत्पात हो रहे हैं; सेना में सब ओर निरानन्द छा रहा है; हवा महा कर्कश और भयानक बह रही है; यह सियाग्न सूर्य की ओर मुँह किए रो रही है। दन्तावल बड़े-बड़े हाथी चीत्कार शब्द कर-कर आँसुओं की धारा बहा रहे हैं। (नेपथ्य में शङ्खध्वनि सुन कर) बिना देवदत्त के ऐसा कठोर नाद दूसरे शङ्ख से नहीं हो सकता इससे इस शङ्ख का बजाने वाला सिवा अर्जुन के दूसरा कोई न होगा। अर्जुन को हमारे और शिष्यों के समान ऋदापि मत समझो। इन्होंने इन्द्रादि देवताओं से अनेक शस्त्र पाया है अब इनसे लड़ना सहज काम नहीं है इससे हम बार-बार यही कहते हैं कि विराट का गोधन जो हम लोग हर लाए हैं जायतो जाने दो पर दुर्योधन की रक्षा हम सब मिल करें।

दुर्योधन—(क्रोध से) जब कभी अर्जुन के नाम को चर्चा होती है तो गुरु सदा उन्हीं की प्रशंसा करते हैं और हम लोगों को पाण्डवों की अपेक्षा हीन और दुर्बल ठहराते हैं, निश्चय ये पाण्डवों से मिले हुए हैं, अर्जुन को इस समय इन्होंने न देखा न सुना केवल शङ्ख का शब्द सुन हम लोगों के घबड़ा जाने के लिए बार-बार कह रहे हैं—अर्जुन आता है। ब्राह्मण की जात हकीकत में बड़ी डरपोक होती है इसी से शास्त्रों में लिखा है कि ब्राह्मण को रणभूमि में कभी न ले जाय।

कर्ण—आप ठीक कहते हो आचार्य के इन वाक्यों से हमारी सेना

के वीरों का जी टूट जाता है। हम प्रण कर कहते हैं कि अस्त्र-विद्या में अद्वितीय साक्षात् यामदग्न्य परशुराम किम्बा चक्रपाणि वासुदेव अथवा वज्रपाणि स्वयं इन्द्र आवैं तो भी हम अपने भुजबल के सामने उन्हें कुछ माल नहीं गिनते तो बेचारा अर्जुन किस गणना में है। इसमें हमारी हानि क्या यह तो बड़े हर्ष की बात है यदि कहीं अर्जुन हों; इतने दिनों की हमारा भुजा की खजुआहट तो किसी तरह दूर हो।

द्रोण—कर्ण की ये बातें सुन हमें हँसी आती है। शरत्काल के मेघ के समान इसका बहुत बड़बड़ करना ही प्रकट करता है कि यह अर्जुन के साथ कैसे युद्ध कर सकेगा। अरे, मूर्ख, पार्थ अकेला त्रिभुवन का जीत सकता है जिसने सहस्रों महाबली राजाओं के देखते मत्स्य भेद पाञ्चाली को व्याह ले गया उसके सन्मुख रणक्षेत्र में ठहरने की तेरी भला क्या सामर्थ्य है “कोटिस्तु कीटापते” तेरा पुरुषार्थ जो न जानता हो उसके सामने तू ये बातें हाँका कर त्रयोदश वर्ष की अवधि पूर्ण हुई है मेघवृन्द से मुक्त मिहिर के सदृश जिस समय पार्थ रणभूमि में देख पड़ेगा उस समय किसका सामर्थ्य है कि उसका असह प्रताप सह सके।

कर्ण—द्विजकुल कमल निशाकर वृद्ध भल्लूक मैं कर्ण हूँ जो अपनी वाणवृष्टि से सूर्य को भी आच्छादित कर सकता हूँ। क्या कहूँ एक तो तू ब्राह्मण दूसरे महाराज दुर्योधन के घर का पूज्य है नहीं तो मैं अभी तेरा शिरच्छेदन कर अपना पौरुष तुझे दिखा देता; बस अब चुप रह मत बोल हम बहुत तेरी सह चुके।

अश्वत्थामा—क्यों रे राधानन्दन सूतसुत, जिनके बल और पुरुषार्थ का आदर भीष्म से महाबली और प्रतापी

सदा करते हैं उनकी नीचतू अवज्ञा कर शिरच्छेदन करने कहता है छोटे मुँह बड़ी बात; देख हम अभी तुम्हें समुचित दण्ड देते हैं ।

(मारने को उठता है)

भीष्म—हाँ, हाँ, गुरुपुत्र आप क्यों व्यर्थ विवाद करते हैं ?

अश्वत्थामा—(क्रोध पूर्वक) महाशय, आप हमें छोड़ दें ।
(काँपते हुए) अरे पापिष्ठ, नराधम, परमाराध्य हमारे तातचरण की तू हमारे ही सन्मुख निन्दा करता है । इसमें झूठ क्या है तू ही बतलाओ । पाण्डवों को कब किसी ने परास्त किया है ? द्यूत में कपट का पाँसा फेंक छल से इन्द्रप्रस्थ का राज्य जो तूने ले लिया यह कुछ बड़े प्रशंसा की बात नहीं है । उः यह कैसा घृणास्पद काम है (दीर्घ निश्वास परित्याग पूर्वक) हाय ! उससमय के अनुचित आचरण का स्मरण कर अब भी अश्रुपात होता है । कहाँ लक्ष्मीरूपी पाञ्चालराज तनया कृष्णा और कहाँ सभा में उनका केश और वस्त्र का आकर्षण । यदि धर्मशास्त्र सत्य हैं और चन्द्र सूर्य अपने नियमित समय में उदय और अस्त होते हैं यदि धरालत में किञ्चिन्मात्र भी धर्म का लेश अभी शेष है तो धर्म-पुत्र युधिष्ठिर अवश्य अपने राज्य पर फिर प्रतिष्ठापित होंगे । जिस सभा में राधागर्भ भारभूत यह पामर सभासद है वहाँ त्रैलोक्य पूजित आचार्य का जो अनादर हो तो इसमें कौन आश्चर्य है । इस चराचर विश्व में कौन होगा जो बासुदेव समान पराक्रम अर्जुन के पौरुष की पूजा न करता हो

जिन्होंने द्वंद्व-युद्ध में चन्द्रचूड़ श्री महादेव जी को सन्तुष्ट कर दिया उनकी प्रशंसा आचार्य्य क्यों न करें।

कर्ण—हम अच्छी तरह से जानते हैं कि तुम मारे डर के पांडवों की इतनी प्रशंसा करते हो सच है (हँसकर) जैसा ब्राह्मण को न्यौता के नाम से प्रसन्नता होती है वैसा ही युद्ध का नाम उनके लिए महद्भय का कारण होता है। केवल उदर-पोषण जो अपने जीवन का मुख्य फल समझते हैं उनका यहाँ वीरों के संघट्ट में आने का क्या प्रयोजन था उनका तो यहाँ से चला जाना ही उत्तम है।

अश्वत्थामा—(क्रोध से दाँत पीस) अरे, क्यों रे सूतकुल कलंक नीच, तू न मानेगा; सचमुच तेरा काल नियराना है क्या ? रे मूढ़, मैं तेरे कहने से यहाँ से चला जाऊँ; दुर्योधन के अनुरोध से तुझे छोड़े देता हूँ नहीं तो अभी पल भर में तेरी दुर्गति कर डालता।

भीष्म—(स्वगत) आज यह सब क्या हो रहा है। जान पड़ता है, आज कौरवा सेना में नारद आए हैं ये सब आपस ही में कट मरते हैं तो शत्रु से क्या लड़ेंगे। (प्रकाश) गुरुपुत्र शान्त हो, क्षमा करो, साधु व्यक्ति अज्ञान तिमिरावृत मूर्खों की अवज्ञा पर ध्यान नहीं देते। अभी तक धृतराष्ट्र को सभा अन्धा जानते थे पर आज से जान पड़ा कि दुर्योधन भी अन्धा है; किमाश्चर्य्य प्रत्यक्ष गाण्डीव धनुष हाथ में लिये अर्जुन को देख भी कहता है कि यह अर्जुन नहीं हैं (कर्ण से) अरे अहंकार मत्त दुर्मति तुझे कुछ ज्ञान नहीं है तू जान बूझ अग्नि में पाँव

डालता है तेरी इतनी योग्यता कि तू आचार्य का शिर-
च्छेदन करने कहता है गुरुपुत्र क्षमा करो ।

(चरण पर गिर पड़ने हैं)

दुर्योधन—(हाँथ जोड़) गुरुपुत्र, यह अज्ञानी आपका बड़ा
अपराधी है । अब आप क्षमा कीजिए ।

द्रोण—महाराज हमें आपके ऊपर कुछ क्रोध नहीं है किन्तु इस
मूर्ख के कटुवाद पर हमें क्रोध आया था । अच्छा, जो कुछ
हुआ सो हुआ ; अब आप उपस्थित युद्ध का उपाय कीजिये
जिसमें पराजय न हो ।

दुर्योधन—(भीष्म से) पितामह, यह यदि धनञ्जय हैं तो
त्रयोदश वर्ष बिना पूरा किए क्यों प्रकट हुए ।

भीष्म—हमने कई बार गिन्ती कर देख लिया है कि १३ वर्ष
पूर्ण हो गया वरञ्च १७ दिन अधिक हो गए । कुरुराय
अब भी तुम समझ जाओ । पाण्डवों को आधा राज्य बाँट
दो हमने विचार कर निश्चय कर लिया है कि युधिष्ठिर
के परमोत्कृष्ट गुण का अन्त नहीं है । प्राण चाहे जाय तो
भी युधिष्ठिर धर्म से बहिर्मुख नहीं होते । यह जो
सन्मुख सिंह सावक-सा गरजता चला आता है यह निश्चय
अर्जुन ही है । कुरुकुल क्या यह सम्पूर्ण भूमण्डल के दलन
करने में समर्थ है आगे जो तुम्हें भला जान पड़े सो करो ।

दुर्योधन—दुर्योधन कण्ठगत प्राण होने पर भी तिलाङ्घ्र प्रमाण
भूमि न देगा ; युद्ध करने का जो उपाय हो उसका
विचार कीजिए ।

भीष्म—(ठण्डी साँसे भर स्वगत) कुरुकुल का अन्त आ पहुँचा
है । क्या कीजिए ईश्वरेच्छा गरीयसी (प्रकाश) अच्छा
तो चलो युद्ध के लिए सज्जित हों । (सब गए)

(यवनिका पतन)

द्वितीय अङ्क

पहला गर्भाङ्क

(स्थान—रणभूमि)

(एक ब्राह्मण का प्रवेश)

ब्राह्मण—बापरे बाप ! ऐसा जानता तो कौन सुसुरा इधर आता ।
छाती ऐसा धड़क रही है मानो प्राण राम अभी प्रयाण
किया चाहते हैं । अच्छा हुआ जो भाग आए तो बच भी
गए । हम समझते हैं हमें कोई पहिचान तो न सकेगा ।
इतनी बड़ी डाढ़ी, कान तक खड़े-खड़े मूँछ, भाई वाह
बड़ा मजा है; जी चाहता है हाथ उठा कर नाचें हा हा
हा (नेपथ्य में शब्द) ओ बाबा अब यह शब्द—
और क्या हुआ चाहता है उहाँ से भाग के तो इधर आए
अब इहाँ से कहाँ जाँय । हाय क्या इसी ओर चला आता
है । (इधर उधर घूमता है) बाबा हम गरीब ब्राह्मण हैं
हमारी ब्राह्मणी को विधवा मत करो एक यजमान ने हमें
गौदान देने कहा था इस कारण उसे घर ही में छोड़
आए हैं । हाय रे पेट, अरे हवक यह सब दुर्दशा हमें
तेरी ही कारण भोगनी पड़ती है । तेरे भरण-पोषण की
जो चिन्ता हमें न होती तो क्यों जीविका ढूँढते-ढूँढते
हम इतने दूर देश में आ पड़ते । उः ऐसा भयानक युद्ध
जिसे याद कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं इस घोर संग्राम में
सबके सब मर गए होंगे केवल हमी शेष बच आए हैं ।
हमें तो इतना भय लगता है हमारी ब्राह्मणी तो अभी
निरी कच्ची है उसे जो अपने साथ लाते तो क्या दशा
होती । झूठ नहीं कहते चलती बार उसने हमें बहुत रोका

था पर ब्राह्मण की जात लोभी मानता है कहना किसी का । हमें आए कितने दिन बीते कहाँ लो हमारा आसरा उसने परखा होगा हम उसे सात परदे के भीतर रखते थे यहाँ तक कि सूर्य और चन्द्रमा भी उसे नहीं देख सकते तो भी किसी न किसी भाँति वह अपना काम कर ही लेती थी तो अब वह आनन्द-पूर्वक स्नान-विहार करती होगी । यह क्यों हम इतना काँपते क्यों हैं ? हे ईश्वर कहीं ऐसा न हो दुविधा में दोनों जाँय इधर ब्राह्मणी भी हाथ में निकल जाय उधर लाभ भी कुछ न हो (नेपथ्य में शब्द) बाप रे बाप ! बस, अब नहीं बचते ! हाय रे अब क्या करै कहाँ जाँय; एक उपाय मन में आया है घूँघट काढ़ स्त्री बन कहीं पर बैठ रहें तो कदाचित बच जाँय क्योंकि स्त्री सदा अबध्य होती है । (घूँघट काढ़ बैठ जाता है) (नेपथ्य में) धरो धरो धरो । (एक सिपाही का प्रवेश)

सिपाही—बड़ी दूर से दौड़ते चले आए हैं देखो न अब तक साँस फूल रही है तो भी न पकड़ सका । अच्छा, तो अब यहाँ थोड़ा-सा विश्राम कर लें । (सब ओर देख) ई का इहाँ देखत आही; एक मेहरारू बैठल है । अरे, ऐसे बिजन बन में यह इहाँ कहाँ से आइल । वाह कस सुन्दर है जनौ गोबर के ढेर पर काठ की पुतली जड़ी होय । (पास जाय) विद्याधरी, तुम के अहिउ इस बिजन बन में तुम्हार आउब कैसे भइल ।

ब्राह्मण कुछ न बोला ।

सिपाही—ई तो जवाब कुछ न दिहिस; एहकर कारन का हौ, देख हमसे तोर कोउनौ बात न छिप सकी, अपनी भलाई चहत हो तो बताओ तू के अहिउ ?

ब्राह्मण फिर कुछ न सनका ।

सिपाही—यह सीधे से न बोलि है “सीधी अंगुरी कतौ घिउ
निकलत है” चलो एहकर घूँघट खोली ।

(घूँघट खोलने लगा)

ब्राह्मण—हूँ हूँ हमें न छूना हम कुलकामिनी हैं ।

सिपाही—एहकर बोल से तो हमें और हू सन्देह पैदा भइल ।
अब तो घूँघट खोलना ही जरूर हौ ।

(पास जाय उमका मुँह खोल देता है)

ब्राह्मण—(काँपता हुआ) हम तुम्हार।

सिपाही—ओ बाबा ई कस मेहरारू हौ एकरे तो इतना बड़-बड़
मोछ हौ ।

ब्राह्मण—हाँ हाँ विधवा विधवा—

सिपाही—अरे विधवा को ?

ब्राह्मण—(रोते हुए स्वर से) अरे, हमारी निपट कच्ची ब्राह्मणी
विधवा होती जाती है हम अब का करी, रे बाबा ।

सिपाही—अच्छा, तो अब तू चल !

ब्राह्मण—कहाँ ?

सिपाही—मसुरार (उसे खींचता है)

ब्राह्मण—सुनो, सुनो, सुनो तो ।

सिपाही—का सुनाता है ।

ब्राह्मण—चण्डीपाठ ।

सिपाही—तो कहु, सुनी फिर ।

ब्राह्मण—कः पापिष्टमतोधिकः ।

सिपाही—बस हो चुका हम न सुनव चण्डीपाठ । धूर्त पाखण्डी
कहाँ का ? (उसे घिराता हुआ बाहर गया)

द्वितीय गर्भाङ्क

(स्थान—विराट का राजभवन)

(उत्तरा और सैरन्ध्री बैठी हुई)

सैरन्ध्री—राजनन्दिनी, बृहन्नला कुँअर के साथ हैं तो कुछ डर नहीं है तुम निश्चय जानो कि कुँअर विजयी होंगे ।

उत्तरा—सैरन्ध्री, अभी तक तो हमें यही निश्चय है कि भैया जीतेंगे । मधुमती क्या गई ?

सैरन्ध्री—उसे गए तो बड़ी देर भई ।

उत्तरा—वह आ तो रही है देखें क्या समाचार लाती है ।

(मधुमती का प्रवेश)

दोनों—(व्यग्र भाव से) मधुमती तैने क्या सुना ?

मधुमती—सर्वनाश ? और क्या इस अभागिनी ने सुना ।

उत्तरा—तो क्या भैया युद्ध में नहीं है ? (रोदन)

मधुमती—ऐसा तो मैंने नहीं सुना ।

सैरन्ध्री—दुर अभागी, तो क्यों ऐसी अशुभ सूचक चेष्टा इनाती है बोल तैने क्या सुना है ?

मधुमती—सुना है कौरव लोग कुमार को पकड़ ले गए ।

सैरन्ध्री—(उत्तरा का हाथ पकड़ कर) राजनन्दिनी, यह बात सर्वथा मिथ्या है । ऐसा कभी नहीं हो सकता । तैने यह किससे सुना है ?

मधुमती—एक दूत से ।

सैरन्ध्री—क्या उसने, अपनी आँखों से इस बात को देखा है कि कुमार पकड़ गए ?

मधुमती—न ।

सैरन्ध्री—तो क्या ?

मधुमती—मारे डर के रणभूमि में तो वह गया भी न था । एक ब्राह्मण घायल और भागता हुआ चला आता था उससे उसने सुना है ।

सैरन्ध्री—(हँसकर) राजनन्दिनी, तुमने इतना ही सुन इसे सच मान अधैर्य हो क्यों रोने लगी हो । हम निश्चय कहती हैं कि इस युद्ध में विजय होगी ।

(एक परिचारिका का प्रवेश)

परिचारिका—राजनन्दिनी, महारानी तुम्हें बुलाती हैं ।

उत्तरा—महारानी क्या कर रही हैं ?

परिचारिका—उन्होंने युद्ध का कुछ समाचार सुना है तबसे बड़ी घबड़ाई हुई है ।

सैरन्ध्री—जान पड़ता है उस निगोड़े दूत ने महारानी को भी घबड़ा दिया । राजनन्दिनी, अब तुम्हें बिलम्ब करना उचित नहीं है ।

उत्तरा—तो आओ हम चलती हैं ।

(उत्तरा और परिचारिका दोनों गई)

मधुमती—हाय ऐसी विपद ! आज देखती हैं हमारे महाराज के घर सब लोग व्याकुल हो रहे हैं । हे भगवान् तू क्या किया चाहता है ?

सैरन्ध्री—मधुमती, क्या राजा होना सहज काम है । राजा को पद-पद में विपद उपस्थित रहती है ।

मधुमती—तो क्या राजा होने का यही फल है ।

सैरन्ध्री—राजा की अपेक्षा तो जो परमदोन और दरिद्र है वह भी सुखी होगा ।

मधुमती—भाई तुम सच कहती हो देखो न आज पुरी भर में ऐसी उदासी हो रही है मानो अन्धकार छाया है ।

सैरंध्री—मधुमती, तू एक बार जा कर देख तो आओ; राजनन्दिनी क्या कर रही है ?

मधुमती—सिवाय रोने के और क्या करती होंगी ! अच्छा हम जाती हैं ।

(प्रस्थान)

सैरंध्री—हा ! एक वह समय था जब कि हम भी ऐसा ही पिता पाञ्चाल-राज के घर में रह कर राजनन्दिनी कहलाती थीं । अहा ! वह समय कैसा अनिवर्चनीय सुख का दाता था । हाय ! वे दिन अब क्या फिर आ सकते हैं । यदि हम भिखारिनी हो द्वार-द्वार भिक्षा माँग आर्य्य-पुत्र पाण्डुतनय पाण्डवों के साथ रह कर किसी भाँति अपना जीवन बितातीं तो वह अच्छा था यह यातना तो न भोगतीं । हाय ! क्या हम राजरानी नहीं हैं तो क्यों यह दुर्दशा भोग रही हैं । यह हमारे ही दुर्भाग्य का फल है जो आर्य्य-पुत्र पाण्डव भी भोगते हैं । हा माता ! यह वही हतभागिनी पाञ्चाली है जिसे तुमने बड़े आदर-स्नेह और यतन से पालन-पोषण किया था । वही अब राज-महिषी भी होकर पराधीन हो सब प्रकार का दुःख भोगते महाकष्ट पूर्वक दिन बिताती हैं । मा, यदि तुमने यह हमारा वृत्तान्त सुना होगा तो तुम्हें कैसी मर्मान्तिक पीड़ा हुई होगी । (रुदन) हाय ! यह पापी देह का पतन हो जाता तो भी अच्छा होता ।

(भीतर भीतर उत्तरा का प्रवेश)

स्वयम्बर के समय देश-देशान्तर के राजा लोग जब मत्स्यभेद न कर सके उस समय इस कठिन प्रण के लिये हमारे पिता का सब कोई तिरस्कार करने लगे । परमेश्वर की कृपा से वह मानो श्राधा पूर्ण हो जाने पर भी अब यह घोर विपत्ति उपस्थित हुई ।

उत्तरा—(स्वगत) ऐं ! सैरन्ध्री क्या राजबाला है ! सैरन्ध्री (कहती जा रही थी) हाय ! आर्य्य-पुत्र के जयी हो जाने पर हमने अपने मन में यह समझा कि हमारी दुख निशा का अन्त हो गया किन्तु अब यह सर्वनाश उपस्थित हुआ । अरे पापाण-सदृश कठोर हृदय हम भली भाँति जानती हैं कि तेरे समान पापी दूसरा कोई न होगा । हा ! धिक् ! तुझे कौन सा सुख भोगने की आशा थी जो जयद्रथ के स्पर्श के समय तू शतधा विदीर्ण न हो गया । (दीर्घ निश्वास परित्याग) हे दीनानाथ ! इस पिशाची पर आप सर्वथा दया-शून्य क्यों हो गए (रुदन) हाय ! हमारे इस दुखी-जीवन का कभी अन्त भी होगा । नहीं जानती कि यह किस पाप-कर्म का प्रायश्चित्त है—मनसा वाचा कर्मणा पाण्डवों के बिना कभी कोई दूसरे पुरुष की तो हमने कभी स्वप्न में भी नहीं चाहना किया फिर क्यों हम पापिनी हुईं जिसका यह प्रायश्चित्त है । हाय ! यह भूमि हमारे लिए मानो शेष की शैया है (नेत्र मूँद भूमि पर शयन)

(उत्तम का प्रवेश)

उत्तरा—सैरन्ध्री की यह सब बातें क्या यथार्थ में ऐसी ही है । जो हो परन्तु अभी इस समय इससे यह प्रकट करना कि हम सब सुनती थीं अनुचित है किन्तु सैरन्ध्री का विलाप सुन हृदय विदीर्ण होता है । आह ! किमाश्चर्य्य सैरन्ध्री क्या सामान्य स्त्री नहीं है ! (सब ओर देख) सैरन्ध्री तू कहाँ है ?

सैरन्ध्री—(उठकर) हे भाई, यहाँ तो हैं ।

उत्तरा—सैरन्ध्री, तुम रोती क्यों हो ?

सैरन्ध्री—(निस्तब्ध)

उत्तरा—क्या हमने तुम्हारा कुछ अपराध किया है जो हमसे नहीं बोलती हो ।

सैरन्ध्री—(निस्तब्ध रोदन)

उत्तरा—तुम्हें रोते देख हमारा चित्त बहुत ही व्याकुल हो रहा है ।
भाई, हमने कुछ तुम्हारा वृत्तान्त सुना भी है ।

सैरन्ध्री—हाय ! हम ऐसी हतभागिनी हैं कि हमारे कारण तुम्हें भी दुख मिला ।

उत्तरा—सैरन्ध्री, हममें कोई बात छिपाना तुम्हें उचित नहीं है ।
अच्छा, चलो माँ के पास चलें । (दोनों गईं)

तृतीय गर्भाङ्क

(स्थान-युद्धभूमि)

(घबड़ाया हुआ उत्तर तत्पश्चात् अर्जुन का प्रवेश)

अर्जुन—सुनो, सुनो, भागो मत । अब थोड़ी-सी बात के लिए हिम्मत छोड़े देते हो । देखो कौरवी सेना के सब बड़े बड़े योद्धा-महार्थी रण से पराङ्मुख हो भागे जाते हैं । चलो जहाँ हमारे प्रपितामह भीष्म हैं वहाँ रथ ले चलो ।

उत्तरा—महाशय, अब हमें शक्ति नहीं है । हम अब सर्वथा असमर्थ हो गए हैं ।

अर्जुन—भाई, जो तुम असमर्थ हो गए तो अब कैसे काम चले ।

उत्तरा—महाशय, हमारा शरीर देखिए सैकड़ों घाव हो गए हैं जिनमें से रुधिर की ऐसी धारा बह रही है जैसे पर्वत से स्रोत बहते हैं । वीरों का सिहनाद और धनुषटकार सुनते-सुनते हमारे कानों के परदे मानों फट-से गए हैं हम तो बधिर हो गए ।

अर्जुन—क्षत्रियों का लक्षण तुम्हारे में अणुमात्र भी नहीं है। शत्रु के सन्मुख से भागना क्षत्रियों के लिए बड़ी निन्दा की बात है। भाई, अब तो इस कायरता से काम नहीं चलेगा।

उत्तर—महाशय, इस समय का आपका यह अद्भुत कर्म दृष्टि-गोचर करना तो एक ठेकाने रहा हमने तो कभी कानों से सुना भी नहीं। महाशय, आपकी यह भयङ्कर मूर्ति देख हमारे प्राण उड़े जाते हैं। हम तो अब युद्ध में किसी प्रकार नहीं ठहर सकते।

अर्जुन—(स्वगत) बड़ी साँसत ठहरी, क्या करना चाहिए। (प्रकाश) स्थिर हो, धैर्य धरो, भय को त्यागो, तुम इतना डरते क्यों हो, तनिक ठहरो; हमारे भुजबल का प्रताप देखो। आज हम इस रणभूमि में रूधिर की नदी बहा देते हैं। दन्तावल हाथी उसी नदी के नक्र-मक्र होंगे। वीरों का मुण्ड कट कर उस नदी में कच्छप होंगे। कटे हुए मनुष्यों की देह मोन होंगी और उनके हाथ-पाँव उस नदी के प्रवाह के वेग में बहते मिल कर तृण काष्ठ के समान होंगे।

उत्तर—महाशय, इसी से तो हम कहते हैं कि इस घोर संग्राम से हमारी किसी प्रकार रक्षा नहीं हो सकती।

अर्जुन—(क्रोध से) धिक तू राजपुत्र हो। क्षत्रियों के कुल में जन्म ले युद्ध से डरता है। भय से तेरा मुँह क्यों सूख रहा है, धैर्यता ग्रहण कर क्यों भयभीत हो अपनी हँसी कराता है। इस सेना में दावानल सम भङ्कर मूर्ति प्रपितामह भीष्म है उनके समीप शीघ्र रथ ले चल।

उत्तर—(नेपथ्य की ओर दृष्टि कर) अरे, देखो, देखो, महाशय

आजानुलम्बित बाहुद्वय मत्त गजेन्द्र सदृश महापुरुष बीर
चूड़ामणि यह कौन चला आता है ?

अर्जुन—यही हमारे प्रपितामह हैं । इन्हीं के समीप हम तुमसे
चलने कहते थे ।

उत्तर—महाशय, इस पवित्र पुरुष को देख अकस्मात् आपके नेत्र
से आँसुओं की धारा क्यों बहने लगी ?

(भीष्म का प्रवेश)

भीष्म—हमारा हृदय निधि, नयनों की पुतली, फाल्गुणी कहाँ
है ? (अर्जुन को देख) अरे अर्जुन, तूने बड़ा दुख
सहा बेटा; हा नष्ट दैव पूर्णिमा का यह पूर्ण चन्द्र दुःख
रूपी राहु से कवलित हो रहा है (ठण्डी साँसे भर)
हाय ! इस पापी देह से यह हमें देखना बड़ा था । तुम सबों
के निर्वासन के समय जो-जो मर्मभेदी वाक्य कहे गए
थे उनका स्मरण जब-जब हमें होता है तब-तब पाषाण-
सदृश हमारा हृदय तापित हो आप ही आप अश्रुपात होने
लगता है । क्या यह सब हम स्वप्न देख रहे हैं अथवा
तुम सचमुच अर्जुन हो । हाय ! अमृत तुल्य राज्य-
भोग को भी जो तिक्त और काषाय समझते थे, दुग्धफेन
निभपर्यङ्क पर शयन को भी जो आदर नहीं करते थे,
सो अब बन-बन घूमते कन्द-मूल-फल का आहार कर
अपना क्लेश जीवन किसी प्रकार बिताया । बल्कल पहिन
तपन-ताप से तापित हो धरासन पर शयन कर दुःख
पूर्वक अपना कालक्षेप करते हैं । हाय रे ! निर्दयी विधि,
इन हँस के बच्चों को निठुर व्याध के हस्तगत करते तुम्हें
अणुमात्र लज्जा किम्बा दया न हुई । हा । यह क्या किसी
प्रकार सम्भव है कि हमारी दुःख निशा का अन्त हो
कभी सुख के सूर्य का फिर से उदय होगा । (स्वगत)

यदि धर्म सत्य है तो इनके कष्ट दाता भी समुचित दण्ड पाँवेंगे । ऐं, यह मैंने क्या कहा ! अरे, हमें तो दुर्योधन की भी कुशल मनाना उचित है ।

अर्जुन—(प्रणाम करता है) पितामह, हम आप ही आते हैं ।

भीष्म—(रोते हुए) क्या हमारे नेत्रों की पुतली है । आओ, रे, हमारी गोद में आओ । (प्रेमाश्रु पूर्वक मस्तक चुम्बन)

अर्जुन—देव, आपका किस निमित्त विराट के देश में आगमन हुआ । पर धन हरन महापातक रूप यह कर्म आपको नहीं शोभा देता ।

भीष्म—पुत्र, तुम्हें क्या वही विश्वास है कि हम विराट राजा की गरु हरने आए हैं । (रोदन) यह केवल व्याज-मात्र था । तुम लोग यहाँ हो इस बात को हमने सुना था पर निश्चय नहीं होता था । हमें विराट के गोधन से क्या प्रयोजन ? हम तो चिरकाल से सन्तप्त इन लोचनों को शीतल करने के हेतु आए हैं । बेटा, अर्जुन इसे तुम यथार्थ मानों ।

अर्जुन—पितामह केवल आप ही के पुण्य-प्रताप से तेरह वर्ष हम लोगों ने निर्विघ्न बिताया; अनेक प्रकार के कष्ट में भी सुरक्षित रह कर पिता आपके चरणारविन्दों का दर्शन पाया । हे देव, हमें आशीर्वाद दो जिसमें हम आज सकल कौरवी सेना को ध्वंस करें, और अब हमें दुर्योधन को दिखा दीजिए जिसमें उस पापिष्ठ नराधम पुरुष पशु को हम समुचित दण्ड दें ।

भीष्म—बेटा अर्जुन, दुर्योधन की भी तो हमें खैर मनाना है ।

अर्जुन—देव, तो आप विलम्ब क्यों करते हो ? कुरुराय की रक्षा जिसमें हो सो उपाय जाकर कीजिए ।

भीष्म—(चलते हुए स्वगत) हमसे यह कैसे होगा कि हम
तुम्हारे प्रति बाण चलावेंगे । (प्रस्थान)

अर्जुन—हम भी पहले चल कर उस पापिष्ठ दुर्योधन को दूँदें ।
(प्रस्थान)

तृतीय अङ्क

पहला गर्भाङ्क

(स्थान—विराट का राजभवन)

(विराट की रानी, उत्तरा, सैरन्ध्री, और दासी आदि बैठी हुई)

रानी—सैरन्ध्री, भगवान की दया से वह भी कोई क्षण होगा
जब हम यह अपने कानों सुनैंगी कि कुमार कौरवों को
जीत घर लौटे आते हैं ।

सैरन्ध्री—महारानी, आप क्यों घबड़ाती हो । वह समय बहुत
जल्द ही आया चाहता है ।

(द्रुतवेग से मधुमती का प्रवेश)

मधुमती—महारानी जी, महाराज आते हैं ।

रानी—सच कहती हो तैने यह कैसे जाना ?

(नेपथ्य में भेरी शब्द)

मधुमती—महारानी, मैं क्या भूठ कहूँगी । सुनो न, यह भेरी
बज रही है हमसे जान पड़ता है कि महाराज विजयी
हुए हैं ।

(विराट का प्रवेश)

विराट—महिषी, सब को देखते हैं किन्तु कुमार को नहीं देखते
इसका क्या कारण है ?

रानी—नरवर ! आपने क्या कुछ नहीं सुना ?

विराट—(आश्चर्य से) क्या कोई नई बात हुई है ?

रानी—त्रिगर्ताधिप से युद्ध करने को जब आप गए उसके बाद कौरवों ने आकर सब ओर से राज्य पर आक्रमण कर दिया ।

विराट—हाय ! हाय ! सर्वनाश ? तब तब ?

रानी—तब कुमार रथी-सारथी प्रभृति कुछ न पाय वृहन्नला को सारथी कर युद्ध के लिए गए हैं ।

विराट—(सिर पीट) अरे, यह तैने क्या सर्वनाश किया ? हा कुमार ! हा प्रिय पुत्र ! हा ममाङ्क लालित, तुम्हें किसने यह अनर्थ सलाह दिया । असंख्य कौरवी सेना के साथ अकेले युद्ध करने का साहस बेटा तुमने क्यों किया । हाय ! हमारा करम निस्सन्देह फूट गया । महिषी दुःख और सोच से हमारी छाती फटी जाती है । हमें एक-एक पल एक-एक युग समान बीतता है । हाय ! हमारे अदृष्ट में क्या यही लिखा था कि अनेक यत्न से लालित-पालित निधि को हमने कराल-काल के मुख में जान बूझ दे दिया ।

(कङ्कभट्ट का प्रवेश)

कङ्कभट्ट—राजन ! आप क्यों व्यर्थ शोकाभिभूत होते हैं । वृहन्नला कुमार के साथ है तो त्रिभुवन एकत्र हो लड़े तब भी कुमार को कुछ भय नहीं है ।

विराट—हमें इस अनित्य राज्य से प्रयोजन क्या है । इस अतुल ऐश्वर्य की अब क्या आवश्यकता है । ये अयुत हस्ती असंख्य पदाति-रथी-अश्वारोही बिना कुमार के सब व्यर्थ है । अब जहाँ वह हमारा हृदय-निधि प्राणाधिक जीवित अथवा निद्रित होगा वहाँ ही हम भी जाएँगे ।

कङ्कभट्ट—राजन् ! बुद्धिमान व्यक्ति विपत्ति में धैर्य्य धारण करते हैं । जिसका सारथी वृहन्नला है उसका पराजय होना कदापि सम्भव नहीं है ।

विराट—वृहन्नला साथ गया है इसी से तो हमें सन्देह होता है ।

कङ्कभट्ट—क्यों ? इसका क्या कारण है ?

विराट—नपुंसक का युद्ध में जाना तो और ही उपहास का कारण है ।

कङ्कभट्ट—(स्वगत) हाय ! कब तक यह पिशाची दुर्दशा हमें अपने बन्धन में छोड़े रहेगी । अर्जुन जो ससागरा पृथ्वी के जीतने में सक्षम हैं उनकी निन्दा हम इन कानों से सुन फिर भी जीते हैं । हाय ! हत-विधि यह दुःख हमें कब तक भोगावेगा ।

(एक द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(हाथ जोड़) महाराज, युद्धभूमि से एक दूत आया है ।

विराट—क्या रणभूमि से आया है ? अच्छा उसे शीघ्र भीतर लै आओ ।

द्वारपाल—जो आज्ञा । (बाहर गया)

विराट—न जाने अदृष्ट में क्या बद है ? देखें, दूत क्या सन्देशा लाया है ।

कङ्कभट्ट—हमारे मन में तो यही बात आती है कि दूत कुछ अच्छा ही सन्देशा लाया है ।

(द्वारपाल सहित दूत का प्रवेश)

विराट—चारण, कहो क्या समाचार रणक्षेत्र से लाए हो । शुभाशुभ अदृष्ट में जो विधि नियम लिखा है वह तो अवश्य ही होगा इससे या तो शुभ समाचार कह हमारे देह-मन्दिर में फिर से जीवन का वास देकर हमें कृतकृत्य करो नहीं तो इस हत-जीवन का अपने बागबज्र द्वारा शेष करो ।

द्वारपाल—महाराज, आप क्यों इतना भय कातर होते हो। यह दास शुभ समाचार लाया है। कौरवी सेना और उसके प्रधान-प्रधान महारथियों को कुमार ने अकेले युद्ध-क्षेत्र में दलन कर जय लाभ किया है और अब आया चाहते हैं।

विराट—(आश्चर्यित हो) आँ हम यह क्या स्वप्न देख रहे हैं अथवा हमें कुछ चित्त-विक्षेप हो गया है अथवा कुमार के शोक में हमें उन्माद हो गया है। हा पुत्र ! तुम कहाँ चले गए ? अब इस तुम्हारे वृद्ध पिता की क्या रक्षा होगी ?

कङ्कभट्ट—राजन् इस शुभ समाचार को सुन आपको आनन्दित होना चाहिए न कि उल्टा आप चञ्चल चित्त होते हैं। इस दूत के वाक्य में आप क्यों नहीं विश्वास करते। जिसका वृहन्नला सारथी है इस चराचर में उसे कौन जीत सकता है ?

दूत—महाराज ! कुरु सेना एक बारगी छिन्न-भिन्न हो सम्पूर्ण पलायमान हो गई। महाराज, मैं क्या आपसे झूठ कहूँगा कुमार विजयी हो देखिए आते होंगे।

विराट—(आनन्द में विह्वल हो) कङ्क इस समय हमारा हृदय आनन्दोर्मि से परिप्लुत हो रहा है। हमें यह अब कुछ ज्ञान नहीं है कि हम जल में हैं अथवा स्थल में। जिन महारथियों का नाम सुन साक्षात् पुरन्दर अस्थिर चित्त हो काँपने लगते हैं ऐसे अतुल बलशाली वीरों को कुमार ने कैसे जीता इस बात का हमें विश्वास नहीं होता।

कङ्कभट्ट—राजन् बुद्धिमान व्यक्ति सम्पद और विपद दोनों में समान भाव रहते हैं इस बात में हर्ष-विषाद दोनों आप सरीखे पुरुषों को अनुचित है। इसमें आश्चर्य क्या है वृहन्नला ऐसा ही अपरिमय बुद्धिशाली है। सो वह कुमार

के साथ है तो कुमार के विजयी होने में क्या सन्देह है ।
 विराट—(आनन्द से गदगद हो) पुत्र उत्तर ! तुम हमारे वंश
 की पताका, पूर्व संचित पुण्य- राशि का सर्वस्व, और
 हमारे सौभाग्य की चरम सीमा हुए । वत्स, तुमने हमारे
 कुल का उद्धार कर हमें कृतकृत्य कर दिया । (रानी से)
 महिषी, तुम अब जाकर कुमार के विजय सूचक जो
 मङ्गल है उन्हें कर अपना जन्म सफल करो ।

रानी—जो आज्ञा । (बाहर गई)

विराट—(कङ्क से) मन्त्रिवर, तुम जाकर नगर में डिरिडिम
 फिरवा दो कि राजमार्ग के दोनों ओर बराबर केले के
 खम्भे गाड़ दिए जाँय और उनमें सुगन्धित पुष्प-युक्त
 बन्दरवार बाँध दिए जाँय, सेना समूह सुसज्जित श्रेणी
 बद्ध होकर सड़क के दोनों ओर खड़ी कर दी जाँय, नगर
 में पुरवासी जन सकल अपने-अपने द्वार पर घट स्थापन
 कर अपना घर दीपावली से सुशोभित करें और जितने
 कुमार अथवा हमारे नगर के प्रतिष्ठित धनी श्रीमन्त हैं
 वे सब उत्तमोत्तम वेशभूषा कर कुमार की अगवानी के
 लिए सज्जित रहें ।

कंकभट्ट—महाराज की आज्ञा ? शिरोधायें । (गमनोद्यत)

विराट—कंक, हे सुनो ! सुनो !

कंकभट्ट—आज्ञा, महाराज ।

विराट—हमारे मन में इस समय एक वासना उठी है कि इस
 आनन्द के समय द्यूतक्रीड़ा करना चाहिए । आओ !
 तुम्हारे साथ पाशा खेलें ।

कंकभट्ट—इस बात में इस आधीन की किसी प्रकार असम्मति
 नहीं है किन्तु एक प्रार्थना है ।

विराट—कहो क्या ?

कंकभट्ट—आनन्द के समय बुद्धि स्थिर नहीं रहती है विशेष कर घूतक्रीड़ा से सकल कार्य नष्ट हो जाते हैं इससे विविध अनिष्ट की सम्भावना हो सकती है । देखो, इसी के कारण कितने लोग लक्ष्मी से भ्रष्ट हो गए हैं । कितनों का राज्य नष्ट हो गया है । महाराज, आपने पाण्डवों का वृत्तान्त सुना भी होगा, इसी भयानक क्रीड़ा के प्रभाव से पाण्डवों का सर्वनाश हो गया । फिर इसमें एक बड़ा भारी दोष यह है कि इसकी चर्चा होने से बैर-भाव पैदा हो जाता है और जब बैर-भाव हुआ तो शत्रु बढ़ते कितनी देर ।

विराट—राज चक्रवर्ती दुर्योधन सरीखे जब परास्त हो गए तो इस संसार में हमारा कौन अब शत्रु बच रहा है (चौपड़ बिछाता है और हाथ में पाशा ले खेलने को उद्यत होता है)

कंकभट्ट—राजन् ! हमने तो पूर्व ही कह दिया था कि जहाँ वृहन्नला विद्यमान है वहाँ विजय में कौन सा सन्देह है ।

विराट—छिःअसीम कुरू सेना का दलन रूप महत कर्म वह नपुंसक वृहन्नला भला क्या कर सकेगा । हम निश्चय जानते हैं कि यह कर्म हमारे कुल की पताका कुमार ही का है ।

कंकभट्ट—महाराज, आप वृहन्नला का बल और पौरुष सम्यक् प्रकार नहीं जानते । वृहन्नला न होता तो जय की कोई आशा न थी ।

विराट —(क्रोधपूर्वक) कंक, विचार कर बोलो, तुम राज सभा में बैठ ऐसा अयोग्य घृणित अश्रद्धेय वाक्य बोलते हो इन्ही लच्छनों से तुम युधिष्ठिर की सभा में रहे होगे । तुम्हें हम सावधान किए देते हैं कि अब ऐसी अशिष्टता

कभी न करना । तुम नहीं जानते यह शमन सहश विराट भूपति की राजसभा है ।

कंक—स्वामिनृ, यह अधोन जो बात यथार्थ है उसके कहने में कभी संकोच न करेगा । हम अब भी मुक्त-कण्ठ होकर कहते हैं कि इस असम्भावित जय का कारण वीर-केशरी बृहन्नला ही है ।

विराट—(अत्यन्त क्रोध पूर्वक कंक के मस्तक पर पाशा फेंक मारता है) पाप मति, मूढ़ नराधम, तुझे बार-बार मना करते हैं तू नहीं मानता हमारे ऊपर तू अपना प्रभुत्व प्रकाश करता है यह नहीं जानता कि बृहन्नला सदृश कितने नपुंसक हमारे यहाँ प्रतिपालित होते हैं ।

कङ्कभट्ट—मस्तक से निर्गत रुधिर को हाथ में रोक अश्रुपूर्ण नयन हो) (स्वगत) हाय ! यह रुधिर यदि कहीं भूमि में गिरा तो विराट का सकल राज्य नष्ट हुआ (प्रकाश) कोई हमें एक पात्र ला दे तो बड़ा उपकार हो ।

(स्वर्ण-पात्र हाथ में लिये सैरन्धी का प्रवेश)

सैरन्धी—प्रभो ! लीजिये यह पात्र ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—महाराज ! कुमार आये हैं क्या आज्ञा होती है ?

विराट—(आनन्द पूर्वक) द्वारपाल, बृहन्नला सहित कुमार को शीघ्र लाओ ।

द्वारपाल—जो आज्ञा ।

(गमनोद्यत)

कङ्कभट्ट—द्वारपाल तनिक इधर आओ ।

द्वारपाल—(समीप आकर) आज्ञा कीजिये ।

कंकभट्ट—(धीरे से) कुमार को यहाँ ले आना पर बृहन्नला से कहना कि राजसभा में आने के लिए तुम्हें कङ्क की आज्ञा नहीं है ।

द्वारपाल—बहुत अच्छा । (बाहर गया)

विराट—(कङ्क के प्रति लक्ष्य कर) यह अभिमान में मत्त पृथ्वीतल में अपने सदृश बुद्धिमान किसी दूसरे को सम-
झता ही नहीं । किस पुरुष को कैसी प्रतिष्ठा देना चाहिये
इस बात का इसे कुछ विचार नहीं है । (नेपथ्य में वाद्य ध्वनि)

(उत्तर का प्रवेश)

विराट—विराट कुल कमल प्रभाकर कुमार क्या आए ?

उत्तर—(पिता को नमस्कार पूर्वक) पिता जी आशा करते हैं कि
त्रिगर्त के युद्ध में मङ्गल होगा ।

विराट—राज्य चक्रवर्ती कुमार उत्तर से जिसके पुत्र हैं उसे कहाँ
अमंगल की सम्भावना ।

उत्तर—पिता, यह क्या ? कङ्क की क्यों यह अवस्था हो गई ?
इनके मस्तक से रुधिर की धारा क्यों बह रही है ?

विराट—वत्स, यह आत्मकृत दौप का फल भोगता है ?

उत्तर—तात, तुमने यह क्या किया ? कङ्क को यह दुर्वस्था कर
तुमने अपने पाँव में आपही कुल्हाड़ी मारा ।

विराट—कुमार, युद्ध में तुम्हें विजयी सुन हम जब-जब तुम्हारी
प्रशंसा करने लगते तब-तब यह कङ्क निःशंक चित्त हो
बृहन्नला की प्रशंसा कर हमें रोक दिया करता था । वत्स,
इस बात पर किसे क्रोध न होगा । पुनः पुनः क्लीव की
प्रशंसा से हमने विरक्त हो इसे पाशा खींच मारा उसी से
यह रुधिर-श्राव हुआ है ।

उत्तर—पिता जी, यह क्या अनर्थ तुमने किया । कङ्क का रक्त
पात होता तो राज्य का अविरात सर्वनाश हो जाता अचला
लक्ष्मी भी चञ्चला हो जाती । तात, शीघ्र आप इनसे क्षमा
माँगिये । हाय ! आपने इन्हें सामान्य ब्राह्मण समझ
लिया । तात, एक बार यदि इन्द्र बैरी होकर कुछ अनिष्ट

किया चाहे तो रक्षा हो सकती है किंतु कंक के वैरी होने से किसी तरह सुरक्षा नहीं हो सकती । पिता जी, अब इनका सान्त्वन किसी तरह कीजिये ।

विराट—(आश्चर्यित हो स्वगत) यह तुच्छ व्यक्ति कङ्क इतना क्यों माननीय है इसमें तो हम कोई ऐसी बात नहीं पाते । जान पड़ता है इसे ब्राह्मण समझ कुमार को इतनी भय हुई । जो हो कोध के आवेश में यह कार्य हमने । अचञ्चा नहीं किया । किमाश्चर्य क्रोध में आकर मनुष्य सब प्रकार के असत्कार्य कर डालते हैं “क्रोधःयापस्य कारणम्” तो अब कंक से क्षमापन माँगना अत्युचित है (प्रकाश कङ्क का हाथ पकड़) कंक, हमसे बड़ा अपराध बन पड़ा । क्षमा करो, हमने अज्ञान से यह कुकार्य किया है । कृपाकर इसे भुला दीजिये ।

कंक भट्ट—राजन् ! आप खिन्न न हों प्रतिपालित अपने प्रभु से यदि रुष्ट हो जायगा तो वह रहेगा कहाँ फिर ।

उत्तर—पिता जी, ऐसा विशुद्ध और उदार स्वभाव परम न्यायशील धर्म परायण जगत् में कोई दूसरा पुरुष होगा, पिताजी, हृदय विदारक आपके इस काम से हमें परम लज्जा और शोक होता है ।

कङ्कभट्ट—कुमार ! आप इस बात से किञ्चिन्मात्र भी खिन्न न हो । इन बातों को भुलाय आप युद्ध का राजा से आनुपूर्विक वर्णन करें ।

उत्तर—महानुभाव, आपके क्षमा करने से राजा ने आज सकल अपराध से निस्तार पाया । आपके प्रसाद से विराटपुर का आज सब मंगल हुआ । आपके रहने से यह सम्पूर्ण राज्य पवित्र हो गया । महानुभाव, जबसे आप इस राज्य में रहते हैं तब से बसुन्धरा यह पृथ्वी का नाम सार्थक हो

गया । सुवृष्टि होने के कारण शस्यमालिनी होकर कामिनी युवती के समान शोभा दे रही है, सकल प्रजागण अपने अपने कर्माँ में प्रवृत्तधर्म की जय मना रहे हैं जो हमारे सम्पूर्ण सुख का हेतु है ।

विराट—हमने न जाने कौन-सा उत्कृष्ट प्रताप किया था जो ऐसे पुत्र-रत्न को पाया । पुत्र, तुम्हारे इन सरस वाक्यों से हमारा अंतःकरण परम आल्हादित हुआ । वन्स, अब युद्ध का वृतांत सुनाय हमें आनन्द रसासिक्त कीजिये । पुत्र, तुम ने आज कौनसा महादुर्घट कर्म किया है जिससे चिरकाल तक तुम्हारा शुभ यश जगतीतल को उज्ज्वल करता रहेगा देवता दैत्य भी जिनका सामना नहीं कर सकते उन कर्णादिक वीर धुरीणों को तुमने कैसे परास्त किया । भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, कृपाचार्य, अस्वत्थामा, ये सब एक एक कालरूप शमन समान हैं ये सब तुम्हारे किस तरह वशीभूत हुए जो हो बेटा तुम्हारे जन्मग्रहण से हमारा कुल उन्नति के सोपान पर चढ़ गया और हम कृत-कृत्य हुये ।

उत्तर—पिता, क्यो व्यर्थ हमारी स्तुति करते हो हम तो कुछ भी न कर सके । भला हमारी क्या सामर्थ्य थी कि शमन सदृश ऐसे-ऐसे महारथियों का पराभव करें ।

विराट—तो तुम किस तरह बिजाई हुए !

उत्तर—उस असख्य सेना समूह को देख हम अत्यन्त भयभीत और व्याकुल हो रथ के नीचे गिर पड़े । उस समय अकस्मात एक देवकुमार ने आकर हमारी रक्षा किया और वे आप रथी हो युद्ध करने लगे । ऐसे घोर संग्राम में किसी ने इतना साहस किया हो दृष्टिगोचर करना दूर रह हमने तो कानों भी नहीं सुना ।

विराट—तो वह देवकुमार कहाँ चले गए । हमें भी कभी उनका दर्शन होगा ।

उत्तर—पिता जी, हम समझते हैं वे इसी देश में कहीं रहते हैं ।

आज अथवा कल तुम उन्हें अवश्य देखोगे ।

विराट—हमारा ऐसा कहाँ भाग्य जो उनका दर्शन पावें ।

उत्तर—पिताजी, तुम निश्चय रखो वे अवश्य ही आवेंगे ।

(मधुमती का प्रवेश)

मधुमती—कुमार, महारानी आपके देखने को बड़ी उत्कण्ठित हो रही हैं ।

विराट—कुमार, जाकर माँ से मिलो । हम भी संध्याबन्धन को जाते हैं ।

(सब गए)

चतुर्थ अंक

पहला गर्भाङ्क

(स्थान—राजमवन)

(सिंहासन पर सैरन्ध्री और कङ्क बैठे हुए सन्मुख अर्जुन हाथ बाँधे खड़े हुए भीमसेन लुत्र हाथ में लिए नकुल और सहदेव चमर करते हुए)

(नेपथ्य में) सभासद गण, प्रजागण सब सुनो; आज विराट के सिंहासन पर महाराज कंक विराजमान हुए हैं । तुम्हारे लोगों के मन में जो-जो कामना हो उसे प्रकाश करो ।

उत्तर—(हाथ जोड़ कर) हृदय, इतने दिनों को आशा आज हमारी पूर्ण हो गई । आज हमारा जन्म सफल हो गया । आज यह सम्पूर्ण राज्य पवित्र हो गया । धर्मनन्दन महाराज कंक की जय हो । (साष्टांग प्रणाम) (नेपथ्य में) महाराज, शीघ्र अस्त्र-शस्त्र सज्जित करो । महाराज, बड़ा अनर्थ हो गया कंक ने आपका राजसिंहासन छीन लिया । हम भी सकल सेनादल साज वेग आते हैं ।

(नेपथ्य में) सेनापति, सेनापति, आँ आँ तुमने क्या कहा, क्या कहा ?

(नेपथ्य में) महाराज, यह बोलने का समय नहीं है । जो कुछ आपको करना हो वह शीघ्र कीजिए ।

(द्रुत वेग से राजा, मंत्री और भृत्य गणका प्रवेश)

विराट—(उच्चैः स्वर से) रे चाण्डाल, मूढ़, नीच-प्रकृति अकुतोभय, यह चाण्डाल कर्म करने का किसने तुम्हें उपदेश दिया । पापात्मा, तेरा इतना साहस ! सेनापति, सेनापति शीघ्र प्रस्तुत हो । अब तक तुमने सेना नहीं सज्जित किया । क्यों विलम्ब कर रहे हो । शीघ्र आओ इन दुष्टों को सुमुचित दण्ड देना है ।

उत्तर—तात, धीरज धरो, धीरज धरो ।

विराट—(उच्चैः स्वर से क्रोध-पूर्वक) पुत्र, तू अति ही कापुरुष है । तेरे शरीर में शूरता का अणुमात्र भी प्रवेश नहीं है । तेरा हृदय भीरुता से पूर्ण है । तेरे भाग्य में क्या लिखा है कुछ नहीं जाना जा सकता । यदि हमारा औरस पुत्र हो तो भीरुता का परित्याग कर अब समराग्नि को पौरुष-रूपी घृत की आहुति से प्रदीप्त कर । देख, वह दुरात्मा कंक और दासी सैरन्ध्री सनातन धर्म का उल्लंघन कर हमारे पवित्र आसन को कलुषित कर रहे हैं । रे पापात्मा, तूने किस साहस से यह काम किया । नराधम, तू सत्यवादी और जितेन्द्रिय भूठ ही अपने को विदित किए था । हा धिक् !

(उच्चैः स्वर से)

सभासदगण, प्रजागण, तुम सब निस्तब्ध क्यों बैठे हो ? हाय, इतने दिन तक हमने तुम्हारा, लालन-पालन व्यर्थ ही किया । सच है, आपत्ति में कोई

काम नहीं आता । रे अन्तःपुरवासी नपुंसक बृहन्नला, तू किसके परामर्श से इस दुष्ट के सम्मुख बद्धाञ्जलि हो खड़ा हुआ है । मूर्ख, तूने समझ लिया कि आज से विराट की लक्ष्मी कंक की किकरी हो गई । रे सूपकार, बल्लभ, आज हमें तेरी भोषण देह और स्थूल बुद्धि का यथोचित परिचय मिल गया । तू अपना निज कार्य को परित्याग कंक की किकरी अङ्गीकार मरणोच्छुक हुआ है । रे निर्बोध, किसने तुझे यह परामर्श दिया है ! रे अश्वपाल, गोपाल, जान पड़ता है तुम दोनों विराट की क्रोधाग्नि में पतंग हुआ चाहते हो । रे नीचो, अब भी क्षमापन का प्रार्थना नहीं करते ।

उत्तर—(भयार्त हो) राजेन्द्र विनती करते हैं स्थिर हो—धैर्य अवलम्बन करो ।

विराट—हतभाग्य पुत्र, जिस दिन युद्धक्षेत्र से तू लौटकर आया उसी दिन से तेरा चित्त स्थिर नहीं है । हम जान गए हमारा राज्य लेने के लिये तू ही ने यह सब यत्न किया है । किन्तु जब तक मेरे तन में प्राण रहेगा तब तक तेरा यह मनोरथ कभी न सिद्ध होने पावेगा ।

बल्लभ—(कंक से) प्रभु, अब हमसे नहीं सहा जाता । केवल आपकी अनुमति चाहते हैं । आज्ञा कीजिए—विराट के कुल का समूल नाश कर दें ।

कङ्क—वत्स, धैर्य धरो, धैर्य ही जगत में सार पदार्थ है । धैर्य ही यज्ञ है, धैर्य ही पुण्य, धैर्य ही शान्ति और धैर्य ही पौरुष का सर्वस्व है ।

विराट—(उन्मत्त के समान) सेनापति, सेनापति, सेनापति ! (उच्चैः स्वर से) आँ, इस जगत में अब हमारा कोई नहीं है । हाय ! हमारी सहायता करने को कोई भी अग्रसर नहीं

होता । हम राज्यच्युत हो गए, हमारा सर्वनाश हो गया;
पृथ्वी देवी स्थान दान दो, हम तुम्हारे गर्भ में प्रवेशकरें ।
हाय, अब हम भिखारी पराधीन होकर जिए तो क्या ?
(आकाश की ओर दृष्टि कर) ईश्वर, हमारे आकाशभेदी
आर्त रव को आप क्यों नहीं सुनते ?

उत्तर—पिताजी, व्यर्थ आप क्यों इतना आकुल-चित्त होते हैं,
धैर्य धरो ।

विराट—अरे पामर, नीच, हमें स्वप्न में भी यह भान न था कि
तेरे मन में इतना कपट भरा है । हा ! तूने पुत्र होकर पिता
ओ निर्वासित किया । दूर हो तू हमें अब मुख न दिखलाव ।

उत्तर—पिताजी, हम शपथ कर कहते हैं कि हम कुछ भी इस
बात को पहले से नहीं जानते थे ।

विराट—अब हमसे नहीं सहा जाता । (तलवार निकालकर)
रे पिशाच कंक, तेरे प्रतिपालन का अन्त में हमें यही फल
मिला । हाय ! हमने विपवृत्त का आरोपण किया ।
कालसर्प को दूध पिलाया । रे पामर नीच, तेरे योग्य
यह सिंहासन है । (कंक के समीप जाने को उद्यत होता है)

उत्तर—हाँ हाँ महाराज, यह आप क्या करते हैं ? (राजा
को पकड़ लेता है)

वल्लभ—(कंक से) महाराज, आज्ञा कीजिए । इस मूढ़ का
कुवाच्य अब हम नहीं सह सकते ।

वृहन्नला—(हँसकर राजा से) जिनकी आज्ञा इन्द्र यम वरुण
कुबेर आदि दिग्पाल भी मानते हैं, वृष्णि भोज अन्धक
आदि समस्त यादव गण सहित भगवान कृष्णचन्द्र
जिनके आगे सदा बधाञ्जलि रहते हैं; महीमण्डल के
समस्त राजागण जिनका नाम स्मरण कर कम्पायमान हो
जाते हैं, दश लक्ष हस्ती, असंख्य अश्व, पदाति, रथ,

जिनकी सेना के साथ चलते हैं, जिनके दान से समस्त भूमण्डल का दरिद्र दूर हो गया है, जिनके धर्मराज्य में असंख्य प्रजागण सुख-पूर्वक काल यापन करते हैं जो पाशक्रीड़ा में सम्पूर्ण राज्य तृणवत् त्यागकर धर्मपाश बद्ध हो १२ वर्ष बन-बन भ्रमण कर अनेक प्रकार का कष्ट सहते रहे, हिमनिर्मुक्त सूर्य समान आज वही धर्मनन्दन राजा तुम्हारे सिंहासन को अपने चरण रज से पवित्र कर रहे हैं। इनके योग्य क्या यह सिंहासन नहीं है ? (अश्रुपात)

विराट—(आश्चर्य से) आँ, यह क्या शान्ति मूल धर्मस्वरूप महाराज युधिष्ठिर है। ऐं, यह क्या हुआ ? बृहन्नला यह क्या हम स्वप्न देख रहे हैं अथवा हमें उन्माद हो गया है। स्पष्ट कह, यह क्या आश्चर्य है ?

बृहन्नला—राजन्, इधर दृष्टि करो। यह तुम्हारे किसी पूर्व संचित पुण्य का फल था जो यह अपूर्व निधि तुम्हें प्राप्त हुई।

विराट—(आश्चर्य से) अच्छा, ये यदि दयापयोधि कर्णधार युधिष्ठिर महाराज हैं तो इनके चारो भाई कहाँ हैं ? सतीत्व की आदर्श रूप सकल गुणभूषिता द्रुपदराज-सुता कृष्णा कहाँ हैं ? बृहन्नला, शीघ्र कहो, शीघ्र, कहो, यह प्राण आकुल हो रहा है।

बृहन्नला—नरवर, सुनो, तुम्हारे सूपकार जो बल्लभ नाम से ख्यात हैं, जिनके तलप्रहार से यत्न राक्षस सब कम्पायमान हो जाते हैं; जिन्होंने दुष्ट कीचक का दमन किया है; जो बनबास का महादुख सहकर तनिक भी क्षुब्ध हृदय न हुए; जो समस्त कौरवदल को समूल ध्वंस कर सकते हैं; केवल धर्मनन्दन की प्रतिज्ञा के अवसान की प्रतीक्षा

कर रहे हैं इनका नाम दुर्जय भीम है; और ये श्यामवर्ण विशाल नेत्र दीर्घ काय अपूर्व रूप-लावण्यशाली जो आपके यहाँ अश्वपाल और गोपाल थे इनका नाम नकुल और सहदेव है ; यह पद्मपलाशाक्षी सुचारु कामिनी जो सैरन्ध्री के वेश में इतने दिन तक आपकी पुरी में वास करती रही, जो सती स्त्रियों की ललाम चूड़ामणि है, जो रामप्रिया जनकनन्दिनी के समान बन-वन भ्रमण कर चिरकाल तक असह-यन्त्रणा सहती रहीं, यह वही नेत्रों को रसाञ्जन साक्षात् लक्ष्मी रूपा जो आपके सिंहासन को सुशोभित कर रही है द्रुपदबाला याज्ञसेनी कृष्णा है । राजन्, मैं अपना परिचय तुमसे क्या दूँ ? यह अधीन धर्मनन्दन का दास अर्जुन है ।

उत्तर—यही महात्मा ने घोर विपत्ति से हमारी रक्षा किया है इनकी प्रशंसा हम कहाँ तक करें । शर द्वारा शत्रु के दलन में ये साक्षात् कालान्तक यम हैं, सागर-सदृश कौरवी सेना से हमारा त्राण करने को यही महात्मा कर्णधार हुए । जिनके अस्त्रबल से कर्ण दुर्योधन-से महारथी जर्जरित हो गए, जिनके शंखनाद से त्रिभुवन कम्पायमान हो जाता है, जिनके धनुष की टंकार सुनते-सुनते हमारा कर्ण बधिर हो रहा है, जिनके दर्शन से इन्द्र चन्द्र प्रभृति देवगण अपने को कृत-कृत्य मान लेते हैं यह वही अद्भुत बलशाली इन्द्रपुत्र पुरुष पंचानन महाबली धनञ्जय हैं ।

विराट—(सजल नयन बधाञ्जलि हो) राजेन्द्र, वीरकेशरी, हमारा अपराध क्षमा करो, नरनाथ आपकी इस असम्भावित दया से हमारा जन्म कृतार्थ हो गया । (भूमि में पतन) कृपासिन्धु ! राज्य, दारा, धन, पुत्र, समस्त अपना स्वत्व

हम आपके पादपद्म में अर्पण करते हैं, हमें क्षमा करो । हम आपका धैर्य, साहस, अतुल पौरुष, आदि गुणों का मान कर द्वार-द्वार भीख माँग अपना कालाति करेंगे तुम्हारी यह कृपालुभूमि का अपने हृदयारविन्द में रख दिन रात आपका नाम स्मरण करेंगे, तुम्हारी मुर्ति का चित्रपट् बनाय एकान्तिक पूजा में सदा निमग्न रहा करेंगे । भाग्य, आज तुम्हारा कौन-सा पुण्य का उदय हुआ जो आज तुम उन चरण कमलों के मकरन्द हुए जो बड़े-बड़े सामन्त चक्रवर्तियों का आराध्य-धन है ।

युधिष्ठिर—राजन्, आपने हमारा जो उपकार किया है उसका बदला हम यावज्जीवन में भी न दे सकेंगे । आपके राज्य में हमने वर्ष-पर्यन्त सुख पूर्वक वास किया । राजन्, हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं माँगों जो तुम चाहो ।

विराट—महाराज, आपकी अनुग्रह से आज हम कृतकृत्य हो गए । हमारी सकल विपद सम्पद हो गई । महाराज कृपाकर हमारी कन्या उत्तरा को कुमार अभिमन्यु के साथ परिणीता होने के लिये अनुमति प्रदान कर हमारा जन्म सफल कीजिए ।

युधिष्ठिर—राजन्, यह आपका अभिलषित हमने स्वीकार किया और यह भी हो कि मेघ समय-समय में वृष्टि करै पृथ्वी शस्यपालिनी हो, ब्राह्मण अपने वेद-मार्ग पर विचरण करें, आर्य लोग सुमति ग्रहण कर अपने देश की वृद्धि में एक मन हों और अधिक क्या कहें ।

[यवनिका पतन]

इति

वेणु-संहार

पात्र-गण

वेणु—चक्रवर्ती राजा

भृगु—मुनिराज

कामदेव, अत्रि, मैत्रावरुणि—ऋषि गण

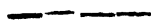
गार्ग्य, कपिष्ठल, काश्यप, धौम्य,—शिष्य

कुक्कुट मिश्र—राज पुरोहित

मिसरानी—कुक्कुट मिश्र की स्त्री

वृद्धश्रवा—द्वारपाल

दौवारिक—डिउड़ीदार



कथा प्रसंग

‘बेणु-संहार’ की कथा पौराणिक है। महाभारत में लिखा है कि महाराज अङ्ग एक बड़े प्रतापी राजा थे। उनकी सुनीथा नाम रानी के गर्भ से बेणु नाम महा-घोर कुमार उत्पन्न हुआ था। बेणु के दुष्ट-स्वभाव से विरक्त होकर महाराज अंग राज्य शासन छोड़ कर वन को चले गये। तब लोगों के कल्याण की कामना करने वाले उन भृगु आदि मुनियों ने देखा कि किसी राजा के न होने से सब प्रजा परस्पर पशुओं के समान निरंकुश होकर स्वेच्छाचार कर रही है। तब उन ब्रह्मवादी ब्राह्मणों ने वीर-जननी सुनीथा का बुलाकर प्रजाओं के आगे बेणु को राज्य देने का प्रस्ताव किया। यद्यपि कुचाली बेणु को राज्य देने में लोगों की आन्तरिक इच्छा न थी तथापि मुनियों ने बेणु को समस्त पृथ्वी-मण्डल का साम्राज्य दिया क्योंकि बेणु के अतिरिक्त कोई राज्य का अधिकारी नहीं था और कोई राजा अवश्य ही बनाना था।

राजा बेणु राज्यासन पर बैठ कर आठों लोकपालों के ऐश्वर्य को प्राप्त हुआ। तब स्वभाव से ही घमंडी बेणु अत्यन्त अभिमान से उन्मत्त हो बड़े लोगों का निरादर करने लगा। इस भाँति ऐश्वर्य के मद से अंध और गर्वित वह दुद्धषे राजा बेणु निरंकुश गजराज के समान रथ पर चढ़कर स्वर्ग और मनुष्य लोक को कम्पित करता हुआ पृथ्वी पर विचरने लगा। उसने अपने राज्य में ढिंढोरा पीटवाया कि “हे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यगण ! यज्ञ, दान और हवन आदि कोई धर्म न करो।” इस

भाँति बेणु ने अपने राज्य में एक दम सब धर्म-कर्म बन्द करवा दिये ।

दुष्ट-चरित बेणु के ऐसे अतत् आचरण देखकर मुनिगण ने सोचा कि “सब लोगों को महा-संकट है ।” तब लोगों पर कृपा करके सब एकत्र हो यों सलाह करने लगे—“हमने चोरों के दिये भय और कष्ट को देखकर उसका निवारण करने के लिये अयोग्य होने पर भी बेणु को राजा बनाया, वह भी दुख देता है,—अब कैसे प्राणियों का कल्याण हो ? जैसे साँप को दूध पिलाना उस पिलाने वाले के ही लिये अनर्थकारी होता है वैसे बेणु को राज्य देना हमारे ही लिये अनिष्टकारी हुआ । मृत्यु की कन्या सुनोथा के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण वह बेणु स्वभाव से ही दुष्ट था; उस पर फिर उसके हाथ में राज्य-शासन दे दिया । अब वह प्रजाओं को नष्ट करना चाहता है अब उचित है कि हम लोग उसके पास चलकर समझावें और इस कुकर्म से निवृत्त करने का प्रयत्न करें; जिससे उसका पातक हमको स्पर्श न करे; क्योंकि उसको दुष्ट जानकर भी हमने राजा बनाया है । यदि वह अधर्ममूर्ति समझाने पर भी हमारा कहा न मानेगा तो लोक के धिक्कार से प्रथम ही जले हुये बेणु को अपने तेज से भस्म कर देंगे ।” ऐसा निश्चय कर वे मुनि बेणु के पास गये और अपने क्रोध को छिपा कर उसे कोमल वाक्यों से समझाने लगे ।.....परन्तु जब उल्टी समझ वाले, पापी, कुमाँ पर चलने वाले बेणु ने तिरस्कार करके मुनियों की विनय-पूर्वक की हुई मङ्गलमयी प्रार्थना को न माना तब वे मुनि उस पर अत्यन्त क्रोध करके कहने लगे कि “यह पापी अत्यन्त धीर-प्रकृति वाला है, यह जीवित रहने पर शीघ्र ही जगत को भस्म कर देगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है । अतएव इसे मारो, मारो ! यह कुकर्मी राजा के श्रेष्ठ आसन पर बैठने के

योग्य नहीं है। यह ऐसा निर्लेज्ज है कि यज्ञ-पुरुष भगवान की निन्दा करता है। जिस ईश्वर के अनुग्रह से इसे राज्य-लक्ष्मी और ऐश्वर्य मिला है उसकी निन्दा, सिवाय इस कृतघ्न पापी बेणु के और कौन करेगा।” मुनिगण तो पहले ही से उस पर कुपित थे पर क्रोध छिपाये थे; अब उन्होंने अच्युत भगवान की निन्दा सुन कर वह क्रोध प्रकट कर उसे मारने का निश्चय कर लिया एवं ‘हुँकार’ करके मार डाला।

मुनियों के शाप से मर जाने पर कोई राजा न रहा, चोर आदि प्रजा को सताने लगे। प्रजा को पीड़ित देख कर मुनियों ने वेणु के मरे हुये शरीर की दाहिनी भुजा को मथा, तब वेणु की भुजा से नारायण का अंश राजा पृथु उत्पन्न हुये। यह आदि राजा हुये क्योंकि इन्होंने ही पुर, ग्राम आदि की रचना की, पहले जो जहाँ पाता था वही ऊँची-नीची पृथ्वी में बसता था।



पहला अङ्क

पहला गर्भाङ्क

नान्दी

भक्त्या श्रीपुरुषोत्तमोयदिरहः संसेवितः स्यान्मुदा ।
सौभाग्यैकनिकेतनं प्रकुरुते तं कीर्तिमन्तं हरिः ॥
सौजन्यामृतवारिधिः सहि भवेत् यस्य कृपाले शतः ।
यः सर्वाश्रय सर्वगः श्रुतिनुतः पायादपापात्सवः ॥

(नान्दी के बाद सूत्रवार का प्रवेश)

सूत्रधार—अहा ! पण्डित-मण्डिता यह सभा कैसा शोभा दे रही है जैसे विकसित अरविन्द पर मधुलोलुप चंचल चचरिकों का झुण्ड आकर सुस्थिर हो बैठा रहे, वैसे ही अभिनय रसिक ये सुजन महोदय आज यहाँ इकट्ठे हुये हैं । तो उचित है कि गुण-लोभी इन सुजनों को अपने तौर्यत्रिक वाद्य-नाद्य-गान से ऐसा लुभावै कि सब लोग प्रसन्न हो जाँय । अच्छा, तो आज कौन से नये नाटक का अभिनय उचित होगा (थोड़ा ठहर याद कर) हम तो भूल ही गये थे, अच्छी याद आई, हाल में हिन्दी प्रदीप के सम्पादक महाशय ने एक नया नाटक तैयार कर हमें दिया है । वह इस समय के लोगों की रुचि के बहुत ही अनुकूल होगा । चलो, उसी के लिये तैयार होने को अपने साथियों से कहें ।

(जाता है)

(कलापी और कलकण्ठ गाते हुये दो नटों का प्रवेश)
 नाथ ! तुम पीड़ा बेगि हरो । रीती भरोभरी ढरकाओ ढरकी
 फेरि भरो—नाथ तुम पीड़ा० ।

दुसह दुःख यह मिटे सकल कुछ ऐसा यतन करो ।
 जब जय जन कुनीति बहु बाढ़ै धराधाम उतरो ।
 अत्याचारी दुष्ट-दलन मित अद्भुत रूप धरो ।
 तिन रूपन-मह पृथुल यशस्कर पृथू नाम बगरो ।

(नेपथ्य में)

यह कौन राजा के विरुद्ध गाना गा रहा है । ठहर, ठहर,
 अभी हम आय तेरा सिर कच्चे घड़े-समान फोड़ चूर-चूर किये
 देते हैं ।

दोनों—(सुन कर) हाय ! गाना भी पूरा न हो सका;
 अत्याचार का अन्त है, चलो, चलो, जल्द यहाँ से निकल भागें ।
 जिसमें इस दुष्ट को अत्याचार का अवसर न मिले ।

(दोनों गये)

इति प्रस्तावना

(ढिंढोरा पीटते एक पुरुष का प्रवेश)

(एक, दो, तीन, ढिंढोरा पीटता हुआ) सुनो, सुनो, सब
 लोग सुनो, सावधान होकर सुनो; कान लगाकर सुनो । महा-
 राजाधिराज वेणु की आज्ञा है जो न सुनैगा उसके कान और
 नाक दोनों काट लिये जायँगे । तब उस नककटे कनकटे को
 कहीं ठिकाना न रहेगा । खबरदार चौकस रहना, “न होतव्यं न
 दातव्यम्” भूल के भी कोई ऐसे रास्ते पर न चलै जिसमें स्वार्थ
 छोड़ परमार्थ की ओर झुक जाना पड़े । नहीं जानते महाराजा

बेणु का कैसा उग्र शासन है, शेर और बकरी एक घाट पानी पी रहे हैं। बड़े-बड़े हेकड़ भी सब हेकड़ी भूल गये। प्रत्यक्ष छोड़ परोक्ष की चर्चा जो कोई करेगा उसका उच्छेद कर दिया जायगा। जो कुछ है प्रत्यक्ष है, परोक्ष कुछ भी नहीं। और प्रत्यक्ष अपना स्वार्थ शरीर को हृष्ट-पुष्ट रख चैन से दिन काटते हुये देहाराम में ही निश्चय परम पुरुषार्थ है। ऋण हो जाय कुछ चिन्ता नहीं, हलुआपूरी जरूर नित्य छाना करो। लोक-सिद्ध प्रत्यक्ष देवता राजा ही परमेश्वर है। या इस नये परमेश्वर के देव दूत खुशामदी हाँ में हाँ मिलाने वाले सेकंडरी या दूसरे परमेश्वर हैं। स्वर्ग-नरक पाप या पुण्य का फल कुछ नहीं है। मौत से आँख मूढ़ जाना ही मोक्ष है। यह सृष्टि अनादि काल से चली आई है और चली जायगी, इसका कर्ता-धर्ता विधाता मानना राँड़ों की गीत है। पूजा-पाठ, जप-तप छोड़ राजा बेणु ही को “त्वमेव माता च पिता त्वमेव” मान भजा करो। हमारे राजा न्याय-अन्याय जो कुछ करें सब न्याय है। उनके कर्म-चारियों की सेवा-टहल मुख्य धर्म है।

देखो, सचेत रहो, उनके दूत मलिकुल मौत से घर-घर गली-गली कूँचे-कूँचे फिरा करते हैं; कोई जरा भी उनकी इन प्राज्ञाओं के विरुद्ध चलेगा दण्ड पावेगा; एक-दो-तीन और सुनो, जो कुछ है सब राजा का है। पेट-मात्र पाल लो, अधिक हाथ फैलाना, सुख से जीवन पार करना चाहते हो तो हमारे महा-राज के अनुकूल वर्तते रहो, प्रतिकूल होने का साहस करोगे तो भेज दिये जाओगे। वहाँ पड़े-पड़े सड़ा करोगे या जला-तिन कर दिये जाओगे। शास्त्र में लिखा है—राजा ही परम रूप हैं, परमपूज्य हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं, सबों का सेव्य हैं, हम सब सके सेवक हैं। सेवा करना अनादि काल से हमारे कपाल में

लिख दिया गया है, तब जो स्वयं प्रभु बनने की चेष्टा करेगा वह जल्द जहन्नुम-रसीदा होगा । एक-दो-तीन जाता है ।

(प्रस्थान)

(भुण्ड के भुण्ड नागरिकों का प्रवेश)

पहिला—भाई मुना है जब से हमने इस खबर को ।

होश गायब हो सिधारा आसमान को ॥

उससे काँप रहा है तन हमारा ।

कहो कैसे करेंगे यार अब हम सब गुजारा ॥

पर क्या चारा है ।

दूसरा—कोई चिन्ता नहीं हम आकर्षण-मन्त्र जानते हैं ।
नहीं तो न्यूटन के आकर्षण की ईजाद कब काम आवेगी जो
आपके होश को लाके न हाजिर करेगी । घबड़ाइये नहीं ।

तीसरा—भाई, हम तो “राजा करै सो न्याय” वाली गीत गाते हैं । सर्व-साधारण के लाभ को लात मारते हैं । जिससे अपना स्वार्थ सधै सोई किया चाहते हैं । “स्वार्थभ्रन्शोहि नृपः” शान्तवृत्ति धरे जोश को पास नहीं फटकने देते, हाँ में हाँ मिलाने को बड़ी पण्डिताई और चतुराई मानते हैं । “कोउ नृप होहि हमें का हानी, चेरी छोड़ न होउब रानी” दासस्य दासस्यच दास दास हो सेवा-वृत्ति ही हमारा मूल-मन्त्र पुरुषों से चला आया है । तब हम क्यों इन बातों में पड़ व्यर्थ को सिर पचावें और मन दुखावें ।

चौथा—शाबाश ! गाजीमर्द शाबास ! (स्वगत) ऐसों को जन्म लेने की क्या जरूरत थी । देश के भिखारी न होने से क्या बिगड़ती थी ।

(५६)

(गान)

हे वृन्दारक वृन्दवन्दित सकल शुभ की खान ।

करुणानिधान सुजान प्रभु तুম करहु सुमति प्रदान ॥

सर्व-विरुदावलि-विभूषित पतितपावन नाम पुण्य-कीर्तन
वेद-वेदित-ज्ञान । प्राणप्रद प्रणतार्तिभंजन श्री निकेत भगवान् ।
दबहु दीन दयाल हम पर जानि निज सन्तान । ज्ञान से दुर्मति
दहन की बुद्धि उपजो जान । करें देश-सुधार चेष्टा राखि
अपनो मान । सुमति देहु भगवान्, इनको सुमति देहु भगवान् ॥

जे छूँछे झिताव को लोभि करें जाति अपमान ।

स्वारथ-वश नित करें खुशामद त्यागि देश अभिमान ॥

हाँ जी हाँ जी हो को जानैं सुख को परम निधान ।

माँगत-माँगत जनम गवावैं करें उपाय न आन ॥

मेल-मुड्बत भाई-चार सब को करिके पान ।

पर देशिन के लै पालक बनि भारी करें गुमान ॥

जो पुरखन के पुन्य-भाव ते दुरैं कबौ भगवान् ।

पदवी पाय अनादरी ऐहैं ज्यों कूकर को कान ॥

देशभक्ति महिमा के ऊर धरैं न कबहूँ ध्यान ।

करि भारत अपमान कहावैं भारत के सन्तान ॥

पाँचवा—इस गान से प्राचीन आर्यों के उत्कट क्षात्र-धर्म की याद हमारे चित्त को अत्यन्त लोभित करती है कि आज हम इस समभेदी दशा में क्यों आ गये ! अपने प्राचीन गौरव को क्यों भूल गये ! हमारी इस दीन-दशा का मुख्य कारण अपने रूप का भूल जाना है, जब तक इन्हें अपने रूप का ज्ञान था तब तक समस्त भूमण्डल की कोई जाति इनकी किसी बात में बराबरी नहीं कर सकती थी, तो अब क्या उपाय हो कि इनमें फिर पुराना गुण-गर्व आ समाय । (थोड़ा ठहर) हाँ,

अच्छी सुध आई, ऐसी संकीर्ण-दशा में सदा से हमें ब्राह्मणों से सहायता बराबर मिलती रही, इस समय भी सिवाय ऋषि-समाज के दूसरा कोई समझ में नहीं आता कि इस विपत्ति से हमारा उद्धार करे या उद्धार का मार्ग दिखलावे तो उचित है हम सब लोग ऋषि-समाज एकत्र करने का यत्न करें। आओ ? अब चलें। (सब गये)

दूसरा गर्भाङ्क

[हाव-भाव-युक्त एक तरुणी का प्रवेश]

तरुणी—लोग कदाचित् मुझे न जानते होंगे कि मैं कौन हूँ। मेरा सुप्रहीत नाम कुप्रवृत्ति है। ये निपूती के निगोड़े नाहक हमारे राजा को बदनाम किये हैं। कहावत है—“नाच न आवै आँगन टेढ़ा” अपने को तो इतना ज्ञान नहीं कि जान सकें भला क्या बुरा क्या ? उचित क्या अनुचित क्या ? हित क्या अनहित क्या ? बदनाम अलबत्ता किये हैं कि राजा बेगु अविवेकी, अत्याचारी और प्रजा-पीड़क है। सच तो यह है कि ऐसा सुख न पहिले कभी रहा न आगे होगा। सब लोग सब भाँत आज्ञाद और स्वतन्त्र हैं। किसी को किसी बात की रोक-टोक हई नहीं। जिसका जो जो चाहे कर गुजरे, कोई मना करने वाला नहीं। यहाँ तक तो है कि सभ्यता की इस नई चलन में बेटा बाप को मूर्ख और गँवार कहता है so wise we born we call our fathers fools इसके आगे आप जानते ही होंगे। इस महा स्वतन्त्रता का मूल वाक्य भी लोगों ने सुना ही होगा “न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने प्रवृत्ति रेषा भूतानाम्” “न मांस खाने में दोष है न मद्य में न मैथुन में, यह तो जीव-मात्र की दुर्वृत्ति है”; पर इस वचन की कार्रवाई ठीक-ठीक इसी

समय हुई । हमारे महाराज के राज में चरिन्द और परिन्द में कोई न बच रहा जो काम में न लाया जाय । कहा भी है—
 “जीवहि जीव अधार” तब इसमें पाप और दोष क्या ? मद्य का तो कहना ही क्या ? घर-घर अमृत-सरीखी धारा बह रही है । (नाचती हुई) “पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पित्त्वा धरणी तले । उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।” क्या सुगम उपाय मुक्त हो पुनर्जन्म न लेने का निकाला है, मुक्ति का मार्ग सुझाने में कहीं से कसर न रही । ऐसा ही नर-नारी दोनों अपनी अपनी ओर से स्वतन्त्र हैं । जब जिसका जी चाहे उतने समय के लिये वह किसी की व्याही को गाड़ी पर चढ़ाय जहाँ चाहे डोलता फिरै इसमें बिगड़ा क्या है । परदा-परदा चिल्लाने वालों से कहो बैठे-बैठे सिर धुनै उन्हें क्या मालूम कि यह सभ्यता और आज्ञादगी का ज़माना है और आने वाला है ।

ज़माना आ लगा आज्ञादगी का,
 चहो सो कर लो भैया अपने जी का ।
 रखैं छोटे अदब अब मत बड़ों का,
 करैं भाया हुआ बस अपने ही का ।
 उड़ावैं पाव-रोटी अब खुशी से,
 न देखैं रास्ता हरगिज़ किसी का ।
 बनैं साहब पहन कर कोट पतलूँ,
 मज़ा इसमें बड़ा है ज़िन्दगी का ।
 करें भोजन मज़े से होटलों में,
 मज़ा चख ले बेराण्डी और टी का ।
 मटन बिसकुट और ह्विस्की भी उड़ाये,
 नहीं इसमें इज़ारा है किसी का ।
 जो डूबै नाम पुरखों का तो डूबै,
 भला क्या ज़िक्र है नेको बदी का ।

सदा जोरू को अपने साथ रख कर,
 भिटा दे नाम अब सीता सती का ।
 हवा पछियाँव जब से चल पड़ी है,
 नक़लची भाइयों की बन पड़ी है ।
 जो अन्धे आँख के गांठों के पूरे,
 लगे उड़ने बिना पर के लंडूरे ।
 हवा ने रंग अपना है जमाया,
 लगे करने वही जो जी समाया ।
 नहीं दिल में किसी का डर है इनके,
 बड़े को हैं समझते मिस्ल तिनके ।
 हैं कोरे अक्ल के बे दुम के टट्टू,
 हुये ऐसे नये क़ैशन के पै लट्टू ।
 समय यह खूब आया सभ्यता का,
 खिला गुल हिन्द में आवारगी का ।

मैं भी तभी खुल के टाँग पसारूँगी, अभी तो मैं नाम-मात्र
 की हूँ, मेरा पूर्ण-प्रकाश तभी होगा जब सभ्यता की चाशनी में
 पग लोग परम-स्वतन्त्र बन बैठेंगे उस समय मेरा क्या रूप होगा
 उसे मैंने भविष्यवाणी की तरह कह सुनाया । महाराज की
 आज्ञा हुई कि हमारे शासन के मूल-सूत्रों को जो नहीं समझे
 हुये हैं उन्हें तू जा सुना, इसीलिये आई हूँ और अब जाती हूँ ।
 (प्रस्थान)

तीसरा गर्भाङ्क

(स्थान तपोवन)

(गाते हुये दो ऋषिकुमारों का प्रवेश)

तरू तालीस तमाल-ताल-हिन्ताल मनोहर ।
 मंजुल-वंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर वर ।

एला ललित लवंग-सङ्ग पूगीफल सोहे ।

सारी शुक कुल कलित-चित्त कोकिल अलि मोहे ॥

धन्य सुखद-आश्रम पवित्र जहँ ऋषि-जन संचारी ।

विमल नदी सुभग भीम विकसित सित कमल-नील ॥

जहँ निवास करत मनुज होत धर्म धारी ॥ धन्य० ॥

भरनन ते सबत नीर, मृगमद-युत मृदु-समीर ॥

मन्द-मन्द जबहि बहत सकल शोक-हारी ॥ धन्य० ॥

परबत दिग हरित-कुञ्ज शोभा सुग्व कान्ति-पुञ्ज ।

बैठे कोकिल मयूर मधुर धुन उचारी ॥ धन्य० ॥

सुखासीन ऋषि स्वतन्त्र गान करत वेद-मंत्र ।

यज्ञ-धूम की सुवास दिशन स्वच्छ कारी ॥ धन्य० ॥

आहा ! इस तपोवन की अकथ कहानी है । यहाँ के आश्रमों के वर्णन में कवियों का वाक्-विभव भी चुक जाता है तब साधारण-जन की कौन कहे ।

कहुँ द्विज-गण मिलि सुख-श्रुति पढ़हीं ।

कहुँ हरि-हरि हर-हर रट रटहीं ॥

कहुँ मृग-शिशु मृगपति पय पिय हीं ॥

कहुँ मुनि-गण चितबत हरि हिय हीं ॥

जहाँ मलिनता हविर्धूम महँ, नहि चरित्र महँ ।

प्रम जहाँ है हरि-कीर्तन महँ, नहि कलत्र महँ ॥

गर्व जहाँ है निज गुण-गौरव को नहि संपत को ।

प्रणव-कलह जहँ शुकसारी को नहि दंपत को ॥

चंचल चटुल चकोर चंचु-पुट चवित चारु पलास ।

कोकिल कृजित कुंज-कुटीर कृन्तित पथिक बधू जन आस ॥

इत्यादि इस आश्रम के गुण-गान का ओर-ओर नहीं

दूसरा ऋषिकुमार—सच कहते हो, मित्र, पतित पावन यह तपोवन ऐसा ही चित्र-विचित्र है ।

कहूँ विप्र-पूजा कहूँ देव-अर्चा, कहूँ योग-शिक्षा कहूँ वेद-चर्चा ।
कहूँ साधु-पौराण की गाथ गावैं, कहूँ यज्ञ की शुभ्र-शाला बनावैं ।
कहूँ होम-मन्त्रादि के धर्म धारैं, कहूँ बैठि के ब्रह्म-विद्या विचारैं ।

होम का धुआँ आश्रम की पताका-सा आकाश मण्डल में छाया हुआ आगन्तुक पाहुनों को आतिथ्य-सत्कार के लिये मानों बुला रहा है । कुटियों के चारों ओर मृग बधू घम-घम अपने अपने छवनों को दूध पिलाती हुई परिचित ऋषि-पत्नियों की ओर पुआल का चारा पाने को ताक रही हैं । आश्रम में प्रवेश करते ही ऐसी अद्भुत शांति का सञ्चार मन में होता है कि शब्द के द्वारा जिसे प्रगट करना असम्भव-सा है, तिमक-योनि पशु-पक्षी जहां स्वाभाविक बैर छोड़ बैठे हैं । देखो, यह मुग्ध मृग बालक निज जननी के भ्रम से बाघिनी का दूध पी रहा है । मित्र, यह आश्रम क्या है ऐसी-ऐसी अद्भुत घटनाओं का घर है । (दूर पर आगे देख) कमलनयन आजानु-बाहु कम्बुकण्ठ यह बालक समान वय के बहुत बालकों को साथ लिये इधर ही आ रहा है । यह तो कोई होनहार बालक जान पड़ता है ।

पहिला ऋषिकुमार—भाई, हम भी इसे नहीं जानते । चलो, आश्रम के अधिष्ठातृ देवता-सदृश मुनिराज भृगु से चल के पूछें ।

(दोनों गये)

(गाते हुये बालकों का प्रवेश)

प्राणतारति-भंजन खलदल-भंजन । देवकी नन्दन पाहि-हरे ।
कसामुर-सूदन जित खरदूषण यदुकुल-भूषण चक्र-धरे ॥
सन्त-सुखाकर सब गुन-आगर करुणा-सागर धनुष-धरे ।
पाप-क्षय कर दीन दया बर जै नट-नागर दैत्य-दरे ॥
दनुज-दवा नल दितिज-विदारक त्रिभुवन-पालक देवसुते ।

उपरि धृत-मन्दर जित दशकन्धर जानकि जानि नमोस्तुते ॥

भव भय-नाशय बुद्धि-विकाशय सत्व-प्रकाशय विमल मते ।

तृष्णा तरु-खण्डय निज जन-रंजय पातक-भंजय जगत् पते ॥

पहिला बालक—गार्ग्य ! गुरु जी ने कल देश-काल-विभाग समझाया था समझे ?

गार्ग्य—हाँ ! हाँ !! समझा क्यों नहीं । क्या तुम्हीं पढ़ कर समझने वाले हो ! अरे देश बना है दिशु धातु से जाना । दिश अतिसर्जने अतिसर्जनम् दानम् समझे । अति सर्जन दान को कहते हैं । “षट् कर्मा भवेद्विप्रः” मनुस्मृति में पढ़ चुके हैं । ब्राह्मण का छै काम पढ़ना, पढ़ाना, दान लेना, इत्यादि । तो देश के अर्थ भये कैसा ही खज्ज-अखज्ज कड़े से कड़ा दान हो ब्राह्मण लैले और काल के अर्थ पुण्य-काल इस पर्व में इस समय से इस समय तक पुण्य काल है । दाता उसमें दान देने से सीधा स्वर्ग सिधार जाता है समझे ! अब इसके आगे कपिष्टल कहैं क्या समझा ।

कपिष्टल—तुम्हीं बड़े समझने वाले हो, हमने क्या कोदो दैके पढ़ा है ! गुरु की सेवा नहीं किया, बुद्धि, विभव में तुमसे कुछ हेठे हैं ! विभाग में उपसर्ग है और भज के अर्थ सेवा के हैं । तब क्या “सेवा दानं च निष्फलम्” सेवा-टहल कराय जिसने कभी गरीब समझ कुछ दे दिया तो उसका देना निष्फल है । क्यों ठीक है न ? शब्द के तात्पर्यार्थ और बात के मर्म तक पहुँचना सहज नहीं यह हमारी पैनी-बुद्धि का काम है ।

काश्यप—नहीं ! नहीं !! तुम दोनों ने कुछ नहीं समझा, भ्रम में पड़े हुये मर्म तक नहीं पहुँचे, दिशा—जानते हो दिशा क्या है ?—यही पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन, तब जिस दिशा में जो रहता हो वही उसका देश और काल के अर्थ भूत, भविष्य

वर्त्तमान होगा । गुरु जी ने कल हमें मिठाई दी थी जानते हो यह क्या है भूतकाल है भूत-तुम लोगों ने नहीं पाया पछता रहे हो यह क्या हुआ वर्त्तमान, जाना । पछता रहे हो और मन में सोचते हो कि हम भी अब संध्या भलीभाँति कर सुनावें तो मिठाई पावें । यह क्या हुआ, भविष्य । पर समझे रहो, तुम कभी न पावोगे, क्या सभी काश्यप से प्रखर बुद्धि के हैं । मिठाई पाया था तुम्हें भी दे देते विभाग हो जाता ।

धौम्य—नहीं, नहीं, यहभी ठीक नहीं है । देश-काल-विभाग का प्रयोजन ही कुछ और है । देश के अर्थ स्वदेश, पुण्यभूमि, तपोभूमि, जहाँ हम लोग निवास करते हैं । काल से प्रयोजन उचित काल जिस समय जो काम करना उचित हो । यह नहीं कि सबेरे का काम साँझ को करने लग जाँय, प्रातः सन्ध्या साँझ को करें और साँझ की सबेरे । विभाग का अर्थ बाँटना । गुरु जी ने जिसे जो काम बाँट दिया वह वही करे । तुम लोगों को गोचारण का काम सौंपा है तुम वही करो, हमें हॉम के लिये बन से लकड़ी लाने को कहा है हम जाते हैं लकड़ी लाने ।

पहिला बालक—नहीं नहीं ! तुम लोगों में किसी ने इसके अर्थ को नहीं जाना । यह राजनैतिक विषय है, समझावें तब समझोगे । जो अपने देश का शासन अपने आप किया चाहता हो उसके लिये आवश्यक है कि देश और काल के विभाग को अच्छी तरह समझे यह तो शासन का मानो प्रथम-सूत्र है । देश-काल को बिना समझे हम कोई काम कर उठावें कभी कृतकार्य न हों, पीछे हाथ मल पछताना ही शेष रहै । देश-काल-विभाग इन तान शब्दों पर ग्रन्थ के ग्रन्थ राजनीति के लिखे गये हैं । पेड़ा छील-छील खाते-खाते तुम लोगों की बुद्धि पेटारे में बन्द हो गई, जल्दी समझ में न आवेगा । अब चलो, इस समय खेलें, गुरुजी

ने आज शिष्टानध्याय माना है। कुछ शिष्ट-जन आज उनसे मिलने आये हैं।

(सब गये)

दूसरा अंक

पहला गर्भाङ्क

(स्थान-भृगु मुनि का आश्रम)

(भृगु मुनि आसीन)

भृगु—क्या कारण है कि हमारा आश्रम इन दिनों निरन्तर जन-संचार विहीन-सा रहता है ! मनुष्य की कौन पशु-पक्षी तक उदासीन-से मालूम होते हैं। काल विपर्यय-सा होगया है। ठीक समय पर अच्छी वर्षा न होने से आश्रम-पादप सब मुरझाने से हैं। जान पड़ता है यह सब राजा के उपद्रव का परिणाम है क्योंकि अनावृष्ट तथा प्रजा में आधि, व्याधि, रोग, शोक आदि कष्ट का फैलना बिना राजा के अत्याचार के नहीं होता। जब राजा ठीक-ठीक अपने राजधर्म पर आरुढ़ रह प्रजा का शासन करता है तब सब लोग मुदित मन वर्ण और आश्रम के अनुसार चलते हुये अपने-अपने काम में लगे रहते हैं। निरन्तर अच्छी बरसात होने से अन्न-कष्ट कहीं नाम को नहीं रहता। पुष्ट-वृण वीरुध-चर गौवं भरपूर दूध देती हुई क्षीरणी इस नाम को चरितार्थ करती हैं। ऋतु विपर्यय न होने से पादप, फूल, फल समृद्धि-से सुसम्पन्न रहते हैं। राजा में लोभ के आते हो प्रजा के सुख समृद्धि का अन्तर्भाव हो जाता है तो निश्चय इस समय कुछ शजोपद्रव है जिससे सब लोग दुखी हो रहे हैं।

(कुछ नागरिकों का प्रवेश)

भृगु—आप लोगों का आगमन इस समय बहुत ही सामयिक हुआ। मैं यह सोचता ही था। आप लोगों के कुशल-क्षेम में तो कोई अड़चन नहीं है। उदासीन, तन-छीन, मन-मलीन से क्यों हो ? मुख की कान्ति मलीन हो रही है। तुम लोगों के चेहरों पर हम आज वह दमक नहीं पाते जैसी पहिले देखते थे। शोक और चिन्ताग्रस्त-से सब लोग प्रकट होते हो क्या कारण है ?

प्रधान नागरिक—मुनिवर ! आप तो त्रिकालदर्शी हैं। अपने योगबल से मनुष्य के अन्तःकरण की बात जान सकते हैं। तब हम लोगों को अपनी विपत्ति का निवेदन पिष्टपेषण है। ऋषि प्रवर ! हम लोगों पर जब-जब सकट आ पड़ा है तब-तब आप ही सरीखे महात्माओं ने हम लोगों को संकट से उबारा है। ऋषिराज ! इस समय राजा के अत्याचार से हम लोग अकुला रहे हैं। कहीं शरण न देख आपके शरण में आये हैं। हे अशरण-शरण ! अब आपके हाथ में हमारा निस्तार है।

भृगु—आप सब लोग अत्याचार से पीड़ित हैं। इसका भान हमें पहिले ही से हो चुका है। कुल परम्परागत-राज का होना ही बुराई है। अच्छा होगा कि सब लोग अपने मन से चुन कर किसी को राजा करें। पहले एक बार इसे और चल कर समझावें, कदाचित् अब भी अपना सब कुढ़ङ्ग छोड़ क्रम पर आ जाय। जल्दी में आय किसी काम को कर डालना बुद्धि का काम नहीं कहा जाता।

सहसा विदधीत नक्रियामविवेकः परमापदा पदम् ।

वृणुते हि विमृष्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥

जल्दी में आय किसी काम को न कर डाले। बिना विचारे किसी काम के करने में बहुत विपत्ति में पड़ने का भय है। सोच-विचार काम करने वालों को गुण की लोभी संकल सपत्ति आप से आप आय वर लेती है। अच्छा होगा कि हमारे इस यत्न की सफलता के लिये परमात्मा की प्रार्थना पहिले कर ली जाय। अच्छा होगा कि आश्रम के और ऋषियों को भी अपने साथ ले एक समाज बना लें जिसमें हम सब लोगों की एक जत्था बन जाय क्योंकि कहा है “पंचे लोजे कीजे काज। शारे जीते नाहीं लाज।” दूसरे समुदाय में शक्ति दोती है केन्तु इसका यत्न पीछे करेंगे। इस कार्य में हमारा उद्यम सफल हो इसीलिये आओ पहिले कुछ हरिकीर्तन कर लें।

जब-जब गाढ़ परयो निज जन पर तब-तब भये सहाई।
नरहरि बन प्रह्लाद उबारे बामन है असुरारी।
रामचन्द्र है रावण जीत्यो सागर पन्थ बनाई ॥ जब २ गाढ़० ॥
परशुराम अभिराम नाम धरि हैहय-कुल संहारी।
एकिस बार निद्वत्र-छत्र करि धरा-भार हलकाई ॥ जब २ गाढ़ ॥
हलधर द्वापर में अवतरे धेनुक दैत्य विदारी।
द्विविद प्रलम्ब आदि खल खण्डे कृष्णाग्रज कहलाई ॥ जब २ ॥
कंश, केशि, चाणूर दुष्ट-दल मर्दन काज विचारी।
पूरन ब्रह्म अखण्ड रूप है उपजे कुँवर कहाई ॥ जब २ ॥

(एक स्त्री और एक पुरुष का प्रवेश)

पुरुष—सूरत से तो मैं अर्धेड़ बूढ़ा मालूम होता हूँ क्योंकि दाढ़ी और मूछ के बाल खिचड़ी हो गये पर ताकत और हिम्मत जवानों के भी कान काटता हूँ। मेरा नाम दुर्दैव है और इस वड्डो का अनीति। मैं तो बूढ़ा हो गया पर यह अभी श्यामा षडश-वार्षिकी जवान पठिया ही बनी है। यह मेरी ब्याही तो

नहीं है पर समय-समय जब-तब काम निकाले को बहुत है।
आओ ! प्यारी ! प्रिये ! आज रूठी-सी क्यों हो ? (स्त्री को
अपनी ओर खींचता है) ।

स्त्री—(हाथ से उसे हटाती हुई) दुरमुये ! निगोड़ा !
मेरे पीछे पड़ा है । जहाँ-जहाँ मैं जाती हूँ तहाँ-तहाँ यह भी
दाल-भात में मूसलचन्द-सा आ कूदता है । यौवन-मदमाती
रूपगर्विता कहाँ मैं ; कहाँ खबीस-सा मुँह बनाये दीन-हीन निरा-
गँवार यह । जहाँ-जहाँ जाती हूँ तहाँ-तहाँ अपने साथ इसे
पाती हूँ । मारे लाज और शरम के गड़ी जाती हूँ ।

पुरुष—हाँ ! हाँ ! अलबत्ता, पर मेरे बिना तुम कहीं भाती
हो । सबके सामने तो मुझे सरकाती हो पर भीतर ही भीतर
सैन और इशारे में मुझे बुलाती हो । क्यों बात कैसे पते की
कहा कि आँचल से मुँह ढाँप मुसकिराती हो । ज़रा इधर ताक
(अपनी ओर उसे खींचता हुआ) मत अब और ओर भाँक ।
हम तो तेरे हुस्न पर बदनाम हो चुके ।

“हम तालिवे शोहरत हैं हमें नाम से क्या काम ।

बदनाम अगर होंगे तो क्या नाम न होगा” ।

स्त्री—(स्वगत) कहता तो यह सब ठीक है इसकी एक
एक बात बावन-तोला पाव-रत्ती है । जब-जब जिस-जिस ने
अनीति किया, अपने और पराये की विषम-बुद्धि रक्खा, लोभ
के परवश हो अत्याचार और अन्याय पर उतारू हुआ; परि
णाम उसका दुर्दैव के अतिरिक्त और क्या हुआ । दुर्योधन ने
राज के लोभ से पाण्डवों को पराया माना; कौरवों को अपना ।
अन्त में दुर्दैव वहाँ जा बगरा और परिणाम ऐसा भारी संज्ञय
महाभारत हो गया । लोकरावण रावण ने अत्याचार कर अपने
विक्रम और दैव-दुर्लभ वैभव के गब में सबको दबाय के रखना

चाहा; अन्त में परिणाम सर्वनाश का उसने भी पाया । और भी कंस आदि जितने अत्याचारी हुये दुर्दैव ने सबों को जा धर दबाया (प्रगट) अच्छा ! तो अब तू चाहता क्या है ?

पुरुष—हाँ ! अब आई राह पर । बहुत कुछ इधर-उधर उछलती खच्चरी-सा कावा मारा और हमारे चगुल से अलग हो भागना चाहा पर तेरी एक भी न चली । चाहता यही हूँ कि यह तो जानती ही है कि राजा बेगु जैसा अनोति पर कमर बाँधे है तो वहीं अब हमारा डेरा होगा । चल जल्दी यहाँ ऋषियों के न्यायाचरण की अग्नि में अङ्ग भुलसा जा रहा है । यहाँ हम तुम दोनों को ठिकाना नहीं है ।

(प्रस्थान)

दूसरा गर्भाङ्क

(स्थान-नगरवीथी)

(नेपथ्य में कल-कल के उपरान्त कई एक नगरिकों को साथ लिये एक राजदूत का प्रवेश)

राजदूत—उग्र-शासनकर्त्ता हमारे राजा बेगु की आज्ञा है कि जैसा तेरा नाम सुकृतान्तक है वैसा काम भी तुझ से होना चाहिये । सो तू जा इन अपराधियों को साथ ले इनके अपराध की सब कथा लोगों को सुनाय जो दण्ड जिसको हमने जैसा दिया है वह सब को बतला दे । (नगरिकों में स एक को अपने आगे कर) यह “सुचालवर्द्धनी” सभा का सभापति है । हमारे महाराज को जो कुछ अरोधक है वही यह सुचाल-शिन्हा के बहाने लोगों को बतला रहा है । इसलिये इसे दस वर्ष के कठिन कारागार का दण्ड दिया जाता है ।

दूसरा दूत— (उसे धकियाता हुआ) अपने किये का फल भोगने को चल यहाँ से । क्यों राज-विरुद्ध कर्म तू ने किया ? (हाथ में हथकड़ी छोड़ ले जाता है)

नागरिक—हाय ! ऐसे निठुर अन्यायी का भगवान कब सत्यानाश करेंगे । अन्याय ! अन्याय !! महा अन्याय !! (चिल्लाता हुआ जाता है) ।

राजदूत— (दूसरे नागरिकों को आगे कर) यह “विद्या विनोदिनी” पाठशाला का अध्यापक है । ऐसी एक पाठशाला स्थापित कर यह अविद्या-अन्धकार के उच्छेद का यत्न कर रहा है । महाराज को भय है कि सब विद्या पढ़ लेंगे तो हमारी कुटिलता कहीं खुल न जाय । इससे इसे सदा के लिये देश-निर्वासन का दण्ड दिया जाता है ।

दूसरा दूत— (उसे भी वैसा ही धकियाते ले जाता है यह अन्याय ! अन्याय !! चिल्लाता हुआ बाहर जाता है)

राजदूत— (तीसरे नागरिक को आगे कर) तुम सदा महाराज की हाँ में हाँ मिलाते रहे । दंभ के आचरण और चिकनी-चुपड़ी बातों से लोगों को रिझाय ठग लेने में बड़े प्रवीण हो । बहुत ही चलंत-पुरजे हो, महाराज तुम्हारे इन गुणों से रीझ तुम्हें महामहोत्स की पदवी देते हैं । सब लोग ध्यान रखो ! जो कोई हमारे राजा को प्रसन्न रखेगा उसका इसी तरह स्तकार किया जायगा ।

नागरिक—धन्योस्मि ! कृतार्थोस्मि ! अनुग्रहीतोस्मि !—
“अनिष्ट संघात सदा प्रभोक्ता खलाप्रणी धर्मकुठारघाती । तवैष कृत्यान्यतिगर्हितानि फलान्यवापस्यस्य चिरेण राजन्” ईश्वर करे महाराज नरकपुर (रुक कर स्वगत) मेरे मुँह से यह क्या सरस्वती निकल गई, नहीं नहीं स्वर्ग-द्वार के पाहुने हों ।

(जाता है)

दूत—(चौथे नागरिक को आगे कर) तुम स्वार्थ-साधन में बड़े प्रवृण हो । तुमने अपने थोड़े-से लाभ के लिये देश की बड़ी से बड़ी हानि करने में कभी संकोच नहीं किया । ऐसे ही ऐसे लोगों का जब तक एक दल न बन जायगा तब तक राज में स्थिरता न आवेगी । इससे महाराज प्रसन्न हो तुम्हें अर्थ पिशाच की पदवी देते हैं । तुम श्रेष्ठचत्वर के जितने धनी सेठ हैं सबों के सिरताज किये गये ।

नागरिक—ऐसे ही राजा होते रहें तो हम लोगों की बन पड़े, लोगों को ठग रुपयों से घर भर दें ।

दूत—बाकी लोगों को राजकीय-प्रबन्ध न बिगड़े इसलिये महा राज अभी छोड़ देते हैं । और सूचित किये देते हैं कि जो उनके उग्र शासन से बिचलित होगा उस ऐसा दण्ड मिलेगा । जो राजा के अनुकूल रहेगा वह ऐसा ही इनाम भी पावेगा ।

(सब गये)

तीसरा गर्भाङ्क

(स्थान-राजपुराहित कुक्कुट मिश्र का घर)

(राज पुरोहित कुक्कुट मिश्र का प्रवेश)

कुक्कुट—ठोक कहा है “अति परिचयादवज्ञा” अत्यन्त घिष्ट-पिष्ट से आदर-सम्मान मटिया-मेट हो जाता है । बाहर से न मालूम कहाँ-कहाँ के काम आये उनके नाम के आगे दो-दा गज का पुछल्ला लगा दिया । हम मुँह ताकते ही रह गये । पण्डिताई को जो कहा तो हमारी इस पाग और पाव भर सुंघनी के बेल ही से हमारी पण्डिताई झलक रही है । वास्तव में हम हैं भी ऐसे महान् महत्कार पण्डित । भवभूति का कुछ भी आगे पीछे का ज्ञान होता तो—

“उत्पत्स्यते स्ति मम कोपि समाव धर्मा,
कालोह्यं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी”।

हमारा सा पण्डित न आगे था न अब है न कभी होगा । न पुछल्ला ही हमारे नाम के आगे लगा तो हमारी पण्डिताई में कभी खण्डिताई आ सकती है । उः हमारी पण्डिताई का कुछ ओर-छोर है । उरान-पुरान तो किसी गिनती में नहीं, समग्र वेद-वेदाङ्ग को हमने दो दिन में पढ़ डाला । सांख्य, मीमांसा और पातञ्जल को दो घंटे में । तर्कवाद, न्याय को सूँघ कर फेंक दिया । तब हम-सा पण्डित काहे को कहीं होगा । तानचरण हमारे कुछ पढ़-लिखे ती थे ही नहीं, हम धुरन्धर हुये इसलिये हम अपने बाप से भी बड़े हो गये । तब क्या “मूर्ख पुत्रस्तु पण्डितः तृणवन्मन्यते जगत्” इसीसे हम सिर सदा ऊँचा किये रहते हैं, संसार भर को भुनगा मानते हैं । झुकना जानते ही नहीं शालीनता, सभ्यता तथा विनीत होना सबका भंग घोटने के साथ कूड़ी में धर घांट कर पी गये । न विश्वास हो हमारा यह भंग घाटना देख लो । पण्डिताई में और है क्या ? तनिक जवान चर पर हो सो लिखा है,—“पाण्डित्ये चापलं वचः” तिसमें हय राजपुरोहित ठहर, “यात्र न हा ॥ भाऊ” एक गुन हमारे में और बढ़ा भारी है कि व्यवस्था देना बहुत अच्छा जानते हैं । जैसा रूपया पावें वैसी व्यवस्था दे दें । काशी के पंडित यह सब बिना हमो से सांख गये हैं । एक बात और कहते हैं सभा में गये और कोई कुछ पूछ बैठा तो आकाश की ओर ताकने लगने हैं “वैयाकरण खसूची मीमांसक दुर्दुरूहः” जिसमें हमारे भीतर की पाल न खुलै इस-लिये केवल कलंदराजी कर पार ले जाते हैं और बड़े-बड़े विद्वानों पर अपना रोव जमाये रहते हैं पर एक अपनी मिसरानी से अलबता लाचार हैं ।

(७५)

(नेपथ्य में)

कहाँ गये ! घटों से आसरा देख रही हैं । मिलें तो देखों आज सब पंडिताई निकाले देती हूँ ।

कुक्कुट—हो ! आ गई क्या ? (दबक के एक कोने में खड़ा हो जाता है) ।

मिसरानी—काहे ! कहाँ रहे ! अब तक घर से कह के चले थे नोन लेने जाते हैं । अरे, मैं तुम्हारे सब लच्छन जानती हूँ । चला तो सही । हे खाना लुआठ ! मैं असिज वाप की हूँगी तो बे-नोन की दाज ग्विलाऊँगी । हमें तो उसी दिन से क्रोध चढ़ा है जिस दिन तुम्हें दमड़ी दास की बहू में हँस-हँस के बात करते देखा था । चलो तो देखा तुम्हारी कैला गत पनाती हूँ (कान पकड़ ले जाती है)

तीसरा अङ्क

पहला अर्भाङ्क

(स्थान—राज-भवन की डेहड़ि)

(वृद्धश्रवा कंचुकी का प्रवेश)

वृद्धश्रवा—यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्व मविवेकता ।

एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्रचतुष्टयम्

नवजवानी, असंख्य धन-संपत्ति, प्रभुता, इतने पर भी क्या भला है और क्या बुरा क्या हानिकारक और त्यागने योग्य है और क्या काम करने योग्य है इसका भरपूर ज्ञान का न होना इन विचारों में केवल एक ही बात मनुष्य को सब भाँति नाश कर देने में बहुत है न कि जहाँ चारो एक साथ इकट्ठा हैं वहाँ का क्या कहना । हमारे इस नये राजा में आज-दिन ये

साथ आ टिके हैं। तब इसकी भलाई निरी दैवाधीन है परमेश्वर ही कुशल करे। जिस राजघराने में पहले के बूढ़े राजाओं की प्रभुता मान-मर्यादा तथा राजकाज में व्यग्र गंभीर-बुद्धि वाले मन्त्रियों की मंत्रणा के परिचालन में पटुता संसार भर में विदित थी, दूर दूर के आये हुये मण्डलेश्वर राजाओं की भीड़ लगी रहती थी जो जिस श्रेणी के और जिस योग्य थे उनका ऐसी भावभक्ति और खातिरदारी के प्रबन्ध में मुझे जहाँ दम मारने की फुरसत नहीं मिलती थी वहाँ अब सन्नहटा छाया रहता है। मैं भी पड़ा-पड़ा दिन-रात घर्घटा मारा करता हूँ। इसके क्रूरस्वभाव और कुटिलाई से लोग दुखी हो जहाँ जिसके जो में सभाता है भागे जा रहे हैं। जब देखो दो-चार खुशामदी टट्टू घेरे रहते हैं। उन्हीं की हड़ा-कू में इसका दिन-रात कटता है। राज में जो कुप्रबन्ध फैला हुआ है उससे लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। कर के बोझ से प्रजा दबी जाती है। शासन में नरमाई कैसी होती है सो यह जानता ही नहीं। सबों को दबा के हुकूमत के जोर से अपने ताबे में रखना चाहता है। सो कभी संभव नहीं कि यह अपनी कुटिल-पालिसी में सदा कृतकार्य और कामयाब रहे बढ़ई का बायाँ हाथ एक दिन गया ही समझो। सुना है नगर के प्रधान-प्रधान नागरिक लोग ऋषियों की शरण में गये हैं। राज-प्रबन्ध की कुल बागडोर उन ऋषियों ही के हाथ में है। अपने आश्रम में सुख से बैठे-बैठे ऐसे-ऐसे नियम और कायदे गढ़-गढ़ यहाँ भेजते हैं कि उसी के अनुसार इतने बड़े राज का शासन अविच्छिन्न चल रहा है। इस समय जो लोगों में उद्वेग फैल रहा है उसका कारण यही है कि उन नियमों का इस समय उल्लंघन हो रहा है। प्रभुता के मद में चूर इस अविवेकी को जो कुछ समझाओ तो उसमें यह अपनी हक्क मानता है और उस समझाने वाले का उल्टा बैरी

बन जाता है। एक तो ऋषियों का कुपित होना अच्छा नहीं दूसरे आगम कुछ अच्छा नहीं देख पड़ता। इसी घराने के राजाओं की सेवा करते हम बूढ़े हो गये, बाल सब पक गये, दाँत गिर गये, कान से सुन भी कम पड़ता है, कमरं झुक कर कमान हो गई पर अपमान कभी नहीं सहा। बड़े राजा तो इतना मानते थे कि हमारे बिना पूछे कोई काम नहीं करते थे। रनवास में तो हमारा राम-राज था, प्रधान-प्रधान रानियाँ हमारे हाथ की करछली थीं, अनेक दास-दासियों पर हमारा अधिकार था, पुछल्ला-सी लगी हमारे पीछे-पीछे डोलती फिरती थीं। वही अब हम गेंद-सा अलग दूर फेंक दिये गये हैं। प्रभुता के घमण्ड में नई-नई उमङ्ग सूझा करती हैं। कुढग देख भीतर ही भीतर कुढ़ते हैं पर कुछ बोल नहीं सकते। इस घराने से हमारा पुराना प्रेम और स्वामिभक्ति हमें विकल किये हैं। हमसे रहा नहीं जाता फिर भी हमारे महाराज के वंश का अंकुर है बना रहे इसका कोई अनिष्ट न हो तो अच्छा। जाँय—हमारी बूढ़ी महाराणी दिन-रात सोच में भरी उदास रहती हैं उन्हें आश्वासन दें।

(जाता है)

दूसरा गर्भाङ्क

(स्थान—राज-भवन)

(सिंहासनारूढ वेणु)

वेणु—हम सार्वभौम चक्रवर्ती हैं तब हम-से बढ़ कर संसार में कौन हो सकता है जिसका हम मान करें। हमको तो अपनी गम्भीर-बुद्धि के आगे बड़े से बड़े बुद्धिमान् और विद्वान् सब भुनगा जँचते हैं। उः हमारी अथाह-सम्पत्ति, धन और रत्नराशि का कहीं आर-पार है ! तब उद्धत-भाव छोड़ नम्र हो

हम क्यों गिड़गिड़ाँय । आठो दिक्पाल का अंश राजामें रहता है । राजा प्रत्यक्ष देवता है । तब प्रत्यक्ष देवता हमें छोड़ किसी दूसरे को लोग क्यों पूजते हैं । समस्त देवताओं के देवता हमारे विद्यमान रहते ईन्द्र, वरुण, कुबेर इत्यादि होते कौन हैं जिन्हें लोग यज्ञ में आहुति देते हैं । ब्राह्मणों ने यज्ञ की प्रथा चलाय सब बिगाड़ रक्खा है । इसी का फल होगा कि आगे चल इन्हीं के वंशधरों की दुर्गति होगी । (हँस कर)

“ब्राह्मन घर-घर फिरें नाँगते शूद्र बैठ पुजवाते हैं ।
पैसा दो दक्षिणा लेन हित पहरों सीस खपाते हैं ।
ब्रह्मभोज सुन विना बुलाये कोसों दौड़े जाते हैं ।
वेद-पाठ, हरि-भजन, योग जो ब्रह्म-धर्म कहलाते हैं ।
सब को छोड़ वृथा धनिक की घुड़की फिड़की खाते हैं ।
नीचन के घर पचै रसोई पहले उन्हें खिलाते हैं ।
बचे-खुचे से पेट पूर कर निज सौभाग्य सराहते हैं ।
नित बाज़ार से सौदा लावैं जमा खर्च समझाते हैं ।
पैसा टका भूल हित प्रतिदिन डाँट-डपट सब सहते हैं ।
नीच जाति के दूधमुँहों को ब्राह्मण गोद खेलाते हैं ।
लार-मूत वस्तर पर पड़ता तहू नहीं सरमाते हैं ।
ऐसे कितने नीच-कर्म कर तनिक नहीं सकुचाते हैं ।
निपट लालची है कलियुग में द्विजता दाग लगाते हैं” ।

अस्तु, युग-युगान्तर में इन ब्राह्मणों की दुर्गति अवश्य होनहार है और यह सब इसीलिये होगी जो ये सब हमारी अवज्ञा कर हैं । अच्छा है (हँसता है)

(दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक—महाराज की जै हो ! तपोवन से ऋषि लोग आये हैं ।

वेणु—क्या हमारे राज्य में अभी ऋषिकुल बचा हुआ है। हमारी तो सदा यही चेष्टा रही कि ब्राह्मणों को निर्मूल न कर सकें तो इन्हें सब भाँति लुञ्ज-पुञ्ज कर रखें जिसमें ये कभी जोर न पकड़ सकें। अच्छा जा, बुला ला। आने दो, देखा इन डाढ़ी वालों को कैसा बनाते हैं कि इनका ऋषित्व का अभिमान छार में मिल जायगा।

दौवारिक—जो आज्ञा (जाता है और भृगु आदि ऋषियों को साथ लिये फिर आता है) वेणु ऋषियों को बिना प्रणाम किये अकड़ कर बैठ जाता है।

ऋषि समूह—राजन ! तुम्हारा कल्याण हो !

वेणु—आप लोग कौन हैं ? क्यों आये हो ? क्या चाहते हो ? राजाओं के द्वार में भिखारी जङ्गली ह्रस्वों के आने का क्या काम ? क्षितिपाल-मौलिलालित चरण कमल राजा-महाराजाओं के सभा-मण्डप में जाने का क्या क्रम है इसे जंगल के रहने वाले तुम लोग क्या जानो ! बड़े-बड़े नगर तथा राजधानियों में तुम्हारा आवागमन रहा होता तो जानते कि सभ्य समाज का क्या वर्तव्य है। अस्तु कहो, क्या चाहते हो ?

भृगु—(स्वगत) अरे, यह तो बड़ा मरोद्धत है। निश्चय इसका नाश बहुत समाप है। नहीं तो इसकी ऐसी विपरीत बुद्धि न होती “विनाश काले विपरीत बुद्धिः” हम इसे समझाने और उपदेश देने आये थे सो यह उल्टा हमी को मूर्ख बनाता है। चौबे से छब्बे होने गये पास का दो गवाँय दुबे हो रहे, सोलह सौ के हजार हुए। (प्रकाश) राज कुमार ! तुम अभी बालक हो और उस कुल में जन्मे हो जहाँ धर्म की मर्यादा में कभी अन्तर नहीं पड़ा। इससे हम तुम्हारा सब अपराध क्षमा कर तुम्हें समझाते हैं कि न्याय के मार्ग पर चलो जिसमें किसी को क्लेश

न पहुँचे। हम बन के रहने वाले हैं सही, पर तुम ऐसे पण्डित-मानी न जानें कितने सभ्यों को बना दिया है। जिसे तुम सभ्यता कहते हो उसका मूल किसने गढ़ा ? राजकुमार अब भी चेतो भला होगा ?

वामदेव—राजनन्दन ! भृगु बहुत ठीक कहते हैं इनके कहने पर कान दो ।

अत्रि—तुम अभी निरे बालक हो ! वृद्धों का कहना मानना उचित है; नहा मानोगे तो पीछे पछताओगे ! जो समझ के काम करते हैं वे पीछे नहीं पछताते ।

मैत्रावरुणि—तुम बड़े ऊँचे कुल में जन्मे हो अपने कुल का ध्यान कर सुगह सीखो ।

वेणु—ये बन के जीव सुराह सिखलाने आये हैं (हँस कर) चौदहो विद्यानिधान हमें भला क्या कोई सिखावेगा । अस्तु, हम तुम्हारा अपराध क्षमा करते हैं । किन्तु अब ऐसी धृष्टता आगे से न करना, चेतू रखो । नहीं जानते राजा का बड़ा ऊँचा दरजा है । हमीं ईश्वर हैं अत्यन्त को छोड़ परीक्ष पर दौड़ प्रजा को तुम्हीं लोगों ने बिगाड़ रखा है लोकायत न हो लोग अदृष्ट पर दौड़ रहे हैं । बस बहुत हो गया, चले जाओ, नहीं गरदनियाँ दै निकलवा देंगे ।

ऋषि समूह—(क्रोध से) अरे, यह कुलपांसन कुलकुठार कुलांगार बड़ा दुष्ट है । इसका जीवित रहना बड़ा हानिकारक होगा इसे शीघ्र नष्ट करो (मारण का मन्त्र पढ़ कर कमण्डल का जल कुशा से वेणु पर छिड़कते हैं)

दुष्ट-दलन पापी दल खण्ड हूँ फट ।

डाकिन, शाकिन, भूतिन, प्रेतिन आओ आओ आओ भट ॥

दुष्ट-दलन पापी दल-खण्डन हूँ फट ।

मारौ-मारो काटो-काटो कूटो-कूटो पीटो-पीटो चटपट ॥

दुष्ट-दलन पापी दल-खण्डन हूँ फट ।

जो हों ऐसे जन दुखदायी निरे निकम्मे नटखट ॥

दुष्ट-दलन पापी दल-खण्डन हूँ फट ।

अत्याचारी पीडाकारी चंचलचित्त जिमि मरकट ॥

दुष्ट-दलन पापी दल-खण्डन हूँ फट ।

तिनका तुर्तहि करो विनाशन रहै न कोई खटपट ॥

दुष्ट-दलन पापी दल-खण्डन हूँ फट ।

(बेगु शक्तिहीन हो सिंहासन से नीचे गिर गतप्राण हो
जाता है । चारों ओर भोषण हाहाकार छा जाता है)

(परदा गिरता है)

इति

जैसा काम वैसा परिणाम

नहीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ।

यदृशं पुरुषस्येह पर दाराभिमर्षणम् ॥

“पर-तिय रमन” समान, नहिं कुकर्म कोउ आन जग ।

सुख ज्यों ग्रीषम भान, हरत आयु यह नरन कै ॥

पुरुष पात्र

रसिक लाल	...	एक धनी पुरुष ।
राधाबल्लभदास	...	रसिक लाल का मित्र ।
सूत्रधार, महारा		

स्त्री पात्र

मालती		रसिक लाल की स्त्री ।
मङ्गला	...	मालती की पड़ोसिन ।
नाउन	...	मालती के मैके की नाईन्
मोहिनी	...	एक वेश्या ।
नटी		

नान्दा ।

जो धनवान सुजान को करि राख्यो अज्ञान ।
ईश्वर तिन्ह गनिकान सों करौ सदा कल्यान ॥
करौ सदा कल्यान इन्हें सतपन्थ दिखावहु ।
पत्नी धर्म अधर्म जगत में भेद बतावहु ॥
तजैं नीच सब कर्म, करौ कछु ऐसो बोधन ।
वचै रूप सन्मान, नसै नहिं अपने जो धन ॥

(सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार-(नेपथ्य की ओर देख) प्रिये ! शृङ्गार कर चुकी हो
तो आओ ।

(नटी आती है)

सूत्रधार-(नटी से) आर्ये ! तुम बड़ी भाग्यवती हो जो ऐसे
ऐसे प्रतिष्ठित, परम सभ्य, धनी, मानी लोगों को सभा आज
तुम्हारे अभिनय देखने को एकत्र हुई है । इन्हें यदि तुम
अपने गान के तान से रिक्ताओगी तो यथोचित सन्मान
पाओगी । प्रिये ! यह मण्डली प्रायः नवशिक्षित युवा पुरुषों
की है । ऐसे लोग बहुधा हास्यरस के बड़े रसिक होते हैं
इससे कीई हास्यरस प्रधान अभिनय से इन्हें तुष्ट करो ।

नटी—(हाथ से उसे हटा) चलो हटो ! मुँह छिपाओ, जी जला जाता है । तुम्हें लाज नहीं आती, गाना बजाना सूझा है । इन्हें हास्य-रस से तुम रिझाओगे ? ये तो स्वयं हास्य के आधार पात्र हैं इनके ता चरित्र ही ऐसे हैं कि उन पर ध्यान देने से आप ही हँसी आती है ।

सूत्रधार-क्यों ? क्यों ? कौन-सी क्यों देख पड़ती हो ? जिसमें तुम प्रसन्न हो वहाँ हम करें । इन्हें जो तुम हँसी के पात्र समझती हो तो आज इन्हीं के चरित्र का कोई अभिनय करो ।

नटी-जब से हमने अपनी प्रिय सखी मालती का वृत्तान्त सुना है तब से हमने दृढ़ निश्चय कर लिया कि पुरुष व्यक्ति का कुछ विश्वास नहीं इनका भँवरे का राखभाव है ये केवल सुख और आराम ढूँढ़ते हैं दूसरे की पीर ये कुछ नहीं समझते ।

सूत्रधार-प्यारी ! तुमने अच्छा सुझाव मालती का रूपक ऐसे लोगों की शिक्षा के लिये बहुत ही उत्तम होगा । चलो ! इसी के लिये इन्हें लज्जित करें

(दोनों गये)

इति प्रस्तावना ।

पर्दा पहला ।

(स्थान-रसिक लाल का अंग्रेजी ढग से
सजा हुआ बैठक खाना)

(रसिक लाल और राधा बल्लभ दास बैठे हुए हैं)

रा०ब०दा०—(हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ) बाबू ! उस दिन सेठ गण्णूमल के यहाँ जो जलसा हुआ था उसमें भोरही को जो झूमड़ हुई थी जिसमें शहर की चुनी-चुनी खूबखूबियाँ जमा थीं आप सच मानिये जो मैंने आपके लिये चुन रक्खा है वैसी वहाँ एक भी नहीं थी । यकीन रखिये माल ऐसा फ्रेश (Fresh) और चौकड़ है कि देखोगे तो लार टपक पड़ेगी ।

र०ला०—सच कहो ।

रा०ब०दा०—आप जानते हैं हम झूठ कभी बोलते हैं । पर जरा रुपये ज्यादा खर्च होंगे ।

र०ला०—उं ! क्या परवाह है । रुपये हैं फिर लिये, तुम्हें मालूम है हमको इसका निहायत शौक है । चार भले आदमियों में रहना पड़ता है ज़रा ऊपर से रंगे-चुंगे न रहें तो काम नहीं चलता वरना हमें तुम कुछ कम न समझो । ऐसी-ऐसी बातों का ढंग तो हमसे कोई सीख ले ।

रा० ब०दा०—जनाब ! सैकड़ों ऐसे-ऐसे मामलें निपटा डाले । उसके लिये अलवत्ता बड़े खौफ की जगह है जो इन कामों में अभी एप्रेंटिस (Apprentice) और नौसखिया है ।

र०ला०—हाँ तो तुमने क्या तय किया ?

रा०ब०दा०—जी मैंने दरियाफ्त किया था वह एक रकम राजी है पर..... ।

र०ला०—पर क्या ?

रा०ब०दा०—(तीन अंगुली दिखा कर) इतने सौ का खर्च है ।

र०ला०—वही हो ! कहे तो जाते हैं रुपये की कुछ चिन्ता नहीं है ।

तीन सौ क्या हम तीन हजार खर्च सकते हैं । अरे, ओ

महारा ! एक चिलम तमाखू और भर ला ।

(नेपथ्य से) हाँ, सरकार लै आयऊँ ।

(चिलम भर कर लाता है और रख कर चला जाता है)

र०ला०—भला तुम पक्का कहते हो राज़ी हो जायगी ?

रा०ब०दा०—जो ऐसा न होता तो मैं कभी बीड़ा न उठाता । उ :

“एही पापर बेलते धौले आये केस” आप जानते हैं मैं

जो ऐसे कामों का जोहरी हूँ कभी चूकने वाला हूँ । सच

मानिये, माल भी बड़ा चौकड़ है । हितोपदेश तो आपने

पढ़ा ही है, लिखा है—“वालाखी क्षीर भोजनम्, तब

फिर क्या (कहकहे मार हँसता है) खैर ! यह तो सब

हुआ अब बतलाइये कुछ शगुल को भी है ।

र०ला०—हाँ ! रिफ्रेशमेंट (Refreshment) के लिये कुछ

ज़रूर चाहिये । Wait a little, I have bought

some new bottles from Kilner's this

morning.

रा० ब० दा०—Very well ! Please ! look sharp then.

(रसिक लाल भीतर गया)

रा०ब०दा०—(मन में) इस काठ के उल्लू को खूब फँसाया, दो

ही महीने में इसकी सब जायदाद ले हुँर किये देता हूँ ।

तीन महीने हुए जब से इसकी जान पहिचान हुई कई

हजार रुपये खर्च कराये उसका चौथाई अमल्लक उस्तादों

की गोड़ी हुई। खूब चैन उड़े। अच्छा ! तो यहाँ बिलाई के क्या भँस लगती है। रोज नया शिकार मारना और गुलद्वारे उड़ाना। इस तीन सौ में भी दो सौ मेरे बाप के हो चुके। दस-बीस खरच किसी अखोड़ से इसे मिलाये देता हूँ। वाह ! क्या सोच घर से चला और क्या हो गया। इलाही जान में कौल कर आया था कि रसिक-लाल को तेरे यहाँ ला भुकाता हूँ। यहाँ कुछ और ही तार जम गया। अच्छा ! कुछ चिन्ता नहीं ! उस चुड़ो को भी जुल दूँगा नहीं कोई दूसरा असामी इससे भी अधिक माल-दार उसके यहाँ ले जाय भुकावै, (ठहर कर) इसको देर बड़ी हुई क्या करने लगा। (नेपथ्य की ओर देख) हो आ तो रहा है। सब का सब इससे भँस लें; इलाही जान के यहाँ जाता हूँ तो शराब का खर्चा मुझी को देना पड़ता है। आज इसी से काम चलाऊँगा।

(बोतल और ग्लास हाथ में लिये रसिक लाल का प्रवेश)

रा०ब०दा०—भाई ! बड़ी देर हुई अब हम जाते हैं।

र०ला०—कैसे खपती हो इतनी देर से बैठे थे, जब हम माल लाये तब उठ खड़े हुए।

रा०ब०दा०—तो क्या यह सब हमारे ही लिये है ?

र०लाल—और नहीं क्या ?

रा०ब०दा०—हमें तो अब बड़ी देर हुई तुम्हीं इसे अपने मसरफ में लाओ। नहीं ! इसे हमें दे न दा कल हमारे बाप की मासिक श्राद्ध भा है। उच्छिष्ट हो जाने से देवता-पितर के काम की न रहेगी (बोतल उसके हाथ से ले दुपट्टे में लपेट जाने लगा)।

र०लाल—ठहरो ! ठहरो !! अभी और कुछ बात करनी है। कहो उस दिन के फड़ में करीब एक हजार के हाँथ लगे ?

रा०ब०दास—जनाब ! आपसे बन न पड़ा जल्दी कर गये, हम होने तो दाम-दाम उतार लेते असामी बनाने की भी हिकमतें हैं । आपने तो पहिले चुम्मे गाल काटा । पहिला रोज था उस दिन कुछ उसे चुग्घी दै रखना था दूसरे दिन ऐसा मारते कि साँस न आती, बड़ी मेहनत से घात पर चढ़ाया था अब हाथ आना ज़रा मुश्किल है, खैर ! कोई दूसरा चिड़िया फँसायेंगे कोई न काई काँपे में आ ही जायगा, तो उस हज़ार में हमारा और आप का टालंटाळ तो रहेगा न ?

र०लाल—हाँ ! हमें तुमसे कोई उज़र नहीं है । क्यों न रहेगा !

रा०ब० दा०—तो लीजिये कल ही एक नया असामी और लाते हैं ।

र०लाल—एक बात तुमसे और निहायत पोशीदा कहनी थी उसे तुम्हीं कर सकोगे । हम यक़ीन करते हैं उसका ज़िक़िर कभी मुँह पर न लाओगे ।

रा०ब० दास—हुज़ूर फरमावें बन्दा ब दिलोजान बजा लाने को मुस्तैद हूँ ।

र०लाल—(कान में कुछ कहता है)

रा०ब०दास—(कहकहे मार) वाह ! वाह ! खूब कहा ! अच्छा देखेंगे ।

र०लाल—(ऐंड़ाते-जँभाते उठ खड़ा हुआ और चलते-चलते) अब आज बड़ी रात गई दो एक प्याले नोश कर सोयेंगे कल मिलोगें तो उस बात की सलाह करेंगे ।

एक ओर से राधा वल्लभ दास और दूसरी ओर से अपना हुक्का लिये रमिकलाल का प्रस्थान)

पर्दा दूसरा ।

(स्थान-जनानखाने में रसोईघर)

(हाथ में दिया लिये मालती का प्रवेश)

मालती—रसोई करनेवाली ब्राह्मणी चली गई उनके खाने को कुछ रख गई है कि नहीं । तीन दिन बीत गये क्या जानिये आज आवें (एक कोने में ढंकने से ढंका बरतन देख) हो रख तो गई है मालूम ! (बायें हाथ में दिया लै दाहिने हाथ से बरतन खोलती है) इसमें क्या रख गई है ? (देखती है) लुचुई, पराठा, साग, भाजी, मीठा, दही सब कुछ तो है एक सुरुवा नहीं है । रोज सुरुवा खाने की वान उनकी पड़ी है बिना उसके कैसे खाँयगे (सोच कर) अब कौन उपाय करूँ परसों जाती विरिया कह गये रहे “जाते हैं साँकड़-चाकड़ लगा ले आज रात को हम न आवेंगे” सो वह रात बीती, कल का दिन और रात बीती, आज का दिन बीता अब तक नहीं आये । कौन जानै उन्हें कुछ हो तो नहीं गया । कभी हमसे बोलते नहीं इस बात का हमें कुछ दुख नहीं है जो कुछ बदा था सो भया जी से सुखी रहें जो भावै सो करें । हमारे भाग्य में जो सुख बदा होता तो क्या तिरिया का जन्म पातीं । नारी के जन्म समान धिनौना जन्म किसी का न होगा, जिसने पुर्बले में बड़े-बड़े पाप कर रखे हैं वही स्त्री का जन्म पाते हैं । पराधोन, तिस पर भी अनेक यातना जैसे पिजरे में बन्द पखेरु हो । ऊँची-ऊँची दीवालों से घिरा हुआ घर क्या मानो पिंजरा है । सूर्यदेव भी जिसका मुख कभी न देखते हों, न हवा-अंग स्पर्श कर सकती हो वही नारी सती कलावती, पतिव्रताओं में मुखिया समझी जाती है

जिसने बाहर कभी पाँव न रक्खा हो। लिखने-पढ़ने से चरित्र विगड़ जाता है इस कुसंस्कार के कारण उन्हें लिखना, पढ़ना नहीं सिखलाया जाता। बचपन ही से रोना, गाना, गिल्ला, चबाव का अभ्यास करते-करते उमर बढ़ जाने पर भी वही सब बातें बनी रहती है। यहाँ लौं कि अन्त में बड़ी कर्कशा चण्डी-कलहकारिणी होती हैं। अच्छा। तो यह सब किसका दोष है? हम लोगों का तो इसमें कोई दोष नहीं है। लड़काई में बाप माँ के आधीन रहती हैं, व्याह होने पर सास, ससुर और पति के वश में रही। जो वे हमें अच्छी तरह रक्खें; लिखना पढ़ना सिखावें, हमें तुच्छ न समझें, हमसे धिन न करें, मनुष्य का-सा बर्ताव हमारे साथ करें और कहाँ लौं कहें मुँह भर हमसे बोलें भी तो सही, तौ भी हम अपना भाग्य सराहें और अपना जन्म सफल मानें। आठ हो वर्ष से हमें व्याह देते हैं सो भी बिना देखे-भाले; बहुधा एक ऐस के साथ कि जन्म ही नष्ट जाता है।

(नेपथ्य में) यहीं दे जा खाने को (थोड़ा ठहर) अरे ओ बाम्हनी। मिसराइन है कि मर गई। बोलती क्यों नहीं ? मालती—आये मालूम ? घर में तो कोई है भी नहीं। यहाँ से हम कैसे जवाब दें। दिन भर के भूखे हैं मिसराइन न जानें कब आवे तो चलो हमी धर आवें खाने को बैठक में (एक हाथ में दिया दूसरे हाथ में थाली लिये बैठक में थाली रखने जाती है दूसरी आर से रसिक लाल का प्रवेश)।

रंलाल—घर में क्या कोई नहीं है सब मर गये (मालती को आते देख) हरामजादी घण्टों से चिल्ला रहे हैं कुछ जवाब क्यों नहीं देती, खाना क्यों नहीं तैयार हुआ।

मालती—हाँ। हे तैयार है लिये आती हूँ

र०लाल—यहाँ ला—देखें क्या-क्या है (थाली देख) यह क्या अपना सिर लाई है। सुरुवा क्यों नहीं पकाया गया। ले जा हम नहीं ग्वायेंगे। हरामजादी, लुचिचन ! तेरी शामत आई है एक दिन हम तुझे खूब ठीक करेंगे (जाने को होता है) ।

मालती—हाँ ! हाँ ! क्रोध शान्त करो ! जाव न। आज बाम्हनी प्रदोश भूखी रही माँस कैसे चुरवै। तनिक ठहरो। हमी तैयार किये देता हैं। जानती होती कि आज तुम आवोगे तो सुरुवा पकाय रखती। तुम्हारे आने का तो कुछ ठीक रहा नहीं कभी आये कभी न आये। छिन भर बैठो तमाखू वमाखू पियो तब भर में हम तैयार किये देती हैं।

र०लाल—तमाखू पियें तेरा निर यहाँ अन्धखोपड़ी में बैठ तेरा जला चूल्हा-सा मुँह देख कृतार्थ हो जाँयगे (जाने लगा) ।

मालती—(आकुल भाव से सामने जाय हाथ से उसे रोक) सुनो ! सुनो ! जाव न तुम्हारे पाँव पड़ी; तुम्हें हमारी कसम बिना खाये चले जाओगे तो सारी रात हमारा जी करोटता रहेगा। तनिक बैठो हम सब तैयार किये देती है।

र०लाल—हरामजादी ! हम सब तेरी हिंमत समझते हैं। तू बहाने-बहाने आज हमें घर में रक्खा चाहती है। हट जा हमारे आगे से (हाथ से धक्का देता है मालती थाली समेत गिर पड़ती है और आप गाली देता चला जाता है) ।

मालती—(उठ कर) हाथ नसीब ! कुछ बात भी कहना दुर्घट है (दुःख से) आज बिना खाये गये हैं वह भला काहे को खाने पीने को पूछेगी। जैसा हमारा जी कल्लाता है वैसा उसका भी थोड़े ही कल्लायगा। अरे तनिक भी ठहर जाते

तो तुरन्त हम सब तैयार कर देतीं । क्या हम जाने को मना करती रहीं फिर क्या हमारे कहे मान जाते घर में वे कब रहते हैं । हाय ! ऐसा नसोब ! जब से व्याह के आई हैं कभी आँख भर एक बार उनकी सूरत भी आज तक न देखी कि कैसे हैं काले या गोरे ! और बात को कौन भीखै एक बार घर में खाने आते हैं तब भी सीधे से जो दो एक मीठी बात बोलें तौ हू जी जुड़ा जाय सो भी नहीं केवल गाली और फिटकार-अच्छा ! सो भी सही आज खा कर जाते तो मन निश्चिन्त रहता दिन भर पीछे खाने आये सो वह भी मैं अभागिन के कारण आज उन्हें मयस्सर न हुआ ।

(मङ्गला का प्रवेश)

मङ्गला—बहू ! कहाँ हो तनिक दूध.....(देख कर अचरज से) आय ई का ! अन्न काहे बिखरा पड़ा है । रसिकवा फेंक के चला गा है का ? हाँ ! राह में किरोध में भरा कुछ बकत भक्त जाते मिला है । का भा रे बहू ?

मालती—(संकोच से मन की बातें छिपाते हुए) भया क्या मौसी ! तीन दिन पीछे आज घर आये रहें-जो जानती होती कि आज आवेंगे तो भिसराइन को रोक रखती । खाने को मागा भिसराइन तो रहीं नहीं हमी थालो ले कर झपट कर चली राह में गी बंधी हैं मुतहरी में बिछला के गिर पड़ी यही देख उन्हें गुस्सा आया बक-भक चले गये । यही सब सोंच-सोंच रो रही हूँ । सारी रात भूखे रहेंगे और इतना अन्न खराब गया सो अलग ।

मङ्गला—हाँ ! तबै तो कहेऊँ का भा । एही से किरोध में भरा गा ह ।

मालती—(रो कर) हमारा नसीब मौसी ! भला तुमही बताओ

इसमें हमारा कौन अपराध ! तनिक ठहरे भी तो नहीं ठहरते तो हम दूमरा खाना पका देतीं (रोने लगी) ।

मङ्गला-न रो बहू ! तुम धन्य की हो जो सब बरदास करती हो । ओकर चाल तो जस बिगड़ी है वह को नहीं जानत घरवा मे तो कबहूँ एक छिन नहीं ठहरता । का कीन जाय !

मालती-क्या कहें मौसा ! यही सन्तोष किये हैं । उन्हें जिसमें सुख मिलै सो करें । जैसी उनकी मौत हो वैसे रहें । हम सब में राजी हैं । आज ग्याय के जाते तो हमारा जा तो न करोटता । क्या लेने आई हो मौसी !

मङ्गला—बहू ! तोहरे समान सतो, सावित्री कादे को कहीं कोई होगी । हाय ! ऐसी बहू को ऐसा कलेस ।

मालती—(ठठी माँस भर कर) तुम कौन काम से आई हो मौसी ?

मङ्गला—सिकहर पर दूध धरा रहा सो बिलाई निगोड़ी घूमा करती है गिराय दिहिस लरिकवा दूध-दूध रोवत है तनिक होय तो दे डाल ।

मालती—बरतन लाई हो चलो दें—

(दोनों गईं)

पर्दा तीसरा ।

(स्थान-शयन गृह)

(मालती और नाउन बैठी है)

मालती-नाउन ठकुराईन ? माँ ने तुमसे क्या कहा है ?

नाउन-उनही तो हमे भेजिन हैं । चलतो विरिया ऊ हमें समझाय के कहिन कि “नाउन ! तुमसे मालती बहुत हिली मिला है वह अपने मन की सब बात तुमसे खोल के कहेगी

को जाने ओका कुछ बेरामी-ओरामी तो नहीं है जो मालती ऐसी कलेसित है। एहका भी हमें कुछ ठीक पता नहीं लगता जो आवता है वह यही कहता है कि मालती बहुत दुबरी हो गई है। सो एक बार जा देख तो आ तेरे गये से सब ठीक-ठीक पता लग जाई। ”हम आय तुम्हें वैसा ही देखा भी जैसा अम्मा कहिन रहा। दीदी ! तुम तो ऐसा दुबराय गई हो कि पहिचान ही नहीं पड़ता। तुम्हारी न वह देह है न वह चेष्टा न वह हँस्ता-खलता चेहरा जैसा जाड़े में कमल मुरझाय जाय तुम्हार मुँह सूख रहा है। दीदी ! तुम्हे देख हमार छाती फटी जात है। इस दुबलता का कारन हमें कुछ नहीं जान पड़ता (अपने पेट की ओर दिखा कर) का सो तो नहीं है ?

मालती-चल दूर हो।

नाउन-एहमें लाज कौन है ! हमसे कहने में तुम्हार कोउनौ हान है।

मालती-(कुढ़ कर) क्यों नाहक हमें छेड़ती हैं। राह चल कर आई है। थक गई होगी जा सो रह। भला मिश्रुकी को कभी स्वर्ग मयस्सर हुआ है ?

नाउन—तो का तुम्हें कोउनौ रोग है खोल के कहती काहे नहीं । मालती-रोग-ओग हमें कुछ नहीं है—

नाउन—तो फिर तुम काहे ऐसी दुबरी हो, हम तो तुम्हें कोउनौ कलेस नहीं देखती, आज दिन सब भाँत भगवान की तुम पर दया है। जो सुख राजा को भी न होयगा सो तुम्हें मयस्सर है। गहना, कपड़ा, खाने, पहिनने की तो तुम्हें कुछ कमती तो है नहीं।

मालती—उं ! खाने पहिनने का दुःख कौन दुःख है।

नाउन—दीदी ! तो तुम्हें कौन दुःख है ? सास ननद भी कोई तुम पर कोड़ा करने वाली नहीं है जो तुम्हें रोज उठ ताँसती हों । कोई तुम्हारा हाथ पकड़ने वाला नहीं जो चाहें खाव; पियो, लेव, देव सब भाँत रंजी-पुंजी हो ।

मालती—नाउन ठकुराइन ? तू तो बावरी भई है अगले समय की भोली भाली है छक्का-पंजा जो कुछ जानती ही नहीं सास ननद भला क्या कर सकती हैं; वे हृदय को तो दुख दे ही नहीं सकतीं जो कुछ ताड़ना देंगी वह सब केवल शरीर को, मन जो प्रसन्न हो तो वह सब दुःख क्या तनिक भी जान पड़ता है । चलो यह सब जाय दे तू अपनी कुछ बात कह ।

नाउन—हाँ ! और का ओही बात ठहरी कि आन का मूड़ पसेरी सा' ।

मालती—नहीं नहीं ठकुराइन ! हम ठट्ठा नहीं करतीं सच कहती हूँ तेरा मैका ससुरा तो दोनों एक ही गाँव में है । ससुरार से तू कब आई है ।

नाउन—एही अगहन में तो—

मालती—भला ! बता तू कैसे रहती है ।

नाउन—दीदी ! हमार कौन हम तौ गरीब मनई हन । हमरे है का एकै गाँव में व्याही हन यह तो सच है पर सुख की रात ता हम कबहूँ नहीं देखा, कबहूँ एक रांगे का छल्ला तक नहीं जानती । भला गहना-गांठी चूल्हे पड़ा, भाँत-भाँतके कपड़ा चले हैं सबै लोग बाग पहिनत हैं हम आज तक एकौ अंग में भी नहीं हिरावा । बेदे गवा कपड़ा-लत्ता पेट की रोटी को भी लाला पड़ा है जेह दिन तुम चार लोगन की टहल कर चार गण्डा पैसा ले आये वह दिन

तो भर पेट खाये को भी मिला नहीं पड़ी-पड़ी टाँग रगड़ती रही ।

मालती—हम यह नहीं पूछतीं भला वह तो तोको नीकी भाँत रक्खत है न ?

नाउन—ई दुख से तो भगवान की दया से हम बची हन ऐसा तो कब्बौं नाही भा कि ऊ हमरे कहे के रत्ती भर भी बाहेर भये हों ।

मालती—कहीं कोई दूसरी ठौर तो उसका लगाव-वक्ताव नहीं है ।

नाउन—दोदी की बात भला मजूर मनई ऊ ई सब बात का जानै । ऐसा होता तो ब्राह्मन छत्री के बीच में रहना ठहरा कैसे निवाह होत । भला मानुस जान सबै उनका आदर करत हैं । चाहे कोई इन्दर की अपछरा काहे न होय पर हम उन्हें आँखो उठाय कोऊ की ओर ताकत न देखा ।

मालती—ठकुराइन ! तेरे समान सुखी पृथ्वी में कोई न होगी । गहना, कपड़ा सोना, चाँदी, का काम कौन है । दूध, मलाई न भी मिला तो क्या, साँझ के बाद दा दिन में जो साग पात भी खाने को मिलै और महल तुमहला छाड़ पेड़ के तले जो सोना मयस्सर हाँ सो अच्छा, पर जो अपना मालिक अपने कहे में हो तो । अपना आदमी जो तन दे तो तिरिया जात को और चाही का ! उसके समान भाग्यवान और कौन होगा । नाउन तेरा जीवन सफल है ठकुराइन तुम धन्य हो अपने पाँव को धूर हमें दो तो हम माथे चढ़ावें ।

नाउन—राम ! राम ! दोदी, ऐसी बात जिन बोला काहे का हमें नरक में ढकेलती हो । छिः ऐसी बात तुम्हारे कइ योग है । ई बात जाय देव अम्मा हमे जौन बात के लिए भेजिन हैं उसका तो उत्तर देव ।

मालती—(आँख में आँसू भर) कहैं क्या ! माँ से जा कह देना कि हमारी ओर से छाती पत्थर की कर लें समझलें कि मालती मर गई (रोने लगी)

नाउन—आयँ ! इ का ? हम तो यह समझ आई रहीं कि तम अपने जी की बात हमसे कहोगी पर तुम कुलच्छन फैलाय दिहौ जो वह बान नहीं कहतो हो ता हम चली जाता हैं का करैंगो इहाँ रहिके ।

मालती—नाउन ठकुराइन ! क्या कहैं हमारा करम तो सब भाँति से फूट गया ! हम जा-जो यातना भोगती हैं वह सब माँ को नहीं सुनाया चाहतीं वह जो सुनैंगी तो मालती-मालती कह और भी छाती फाड़ मर जायँगी ।

नाउन—अच्छा तो उनसे कहने को जो तुम बरजती हो तो हमें का पड़ी है जो कहैं पर हमसे छिपाती काहे हो ?

मालती—ठकुराइन ! तुम हमने बहुत प्रेम रखता हो, हमारा हाल सुन के बहुत दुखी होगी ।

नाउन—दीदी, हम जो तुम्हारे सुख-दुख की साथिनी न भई तो वह प्रेम कैसा ? तुम चाहे न कहो, पर हम सब तुम्हारे मन की बात जान गई । वह बंसी कैसी जिसमें मछरी न फंसी, जून पड़े पर जो पुकारे से न आवे वह परोसी कैसा, बिना आँधी बौखा के डूब जाय वह नाव कैसी, बात के कहते हो जाँ उसके मरम को न पहुँची वह कैसी नारी ?

मालती—(हँस कर) बाहरं ठकुराइन, तुम तो मसले बहुत अच्छे अच्छे जानती हो, भला तुमने क्या समझा कि हमें कौन सा दुख है ।

नाउन—दीदी, हमे तो ऐसा जान पड़त है कि लाला का कोई और से भी कुछ लगाव है ।

मालती—कुछ क्या बहुत ही बहुत ।

नाउन—हाँ । सच्चों यह व्याधि तुम्हें गरेसे है ।

मालती—कहा क्या कि हमारा कर्म एक बार ही फूट गया (रो रो कर) इतने बड़े घर में आठों पहर भूतिन सी पड़ी रहती हूँ । नाउन ठकुराइन, बहुत तुममे क्या कहें । तुम भी तो स्त्री की जाति हो क्या जानती न होगी वह असह वेदना भला किसके सहे सही जा सकती है । मर्मघात के अतिरिक्त हम तो नित्य-नित्य न जानें कितने लात-घूँसे सहा करती हैं । यही जो चाहता है कि गले में फाँसी लगा कर मर जायँ वा विप खा सो रहें । इतने दिन लों सहा पर अब नहीं सहा जाता । सब लोग मरे जाते हैं हमें मौत भी नहीं पूछती ।

नाउन—वे ऐसे निठुर हैं कि रात को घर भी नहीं आते ?

मालती—पहिले तो कभी नहीं आते थे पर अब थोड़े दिन से हम पर कुछ दया है कि दूसरे तोमरे दो वा तीन बजे रात को घर आ जाते हैं सो भी उससे लाभ क्या ! जैसे कन्ता घर रहे वैसे रहे विदेस, आँख लगते भोर हो जाती है कहाँ तक भीखें हमें तो ऐसा दुःख है कि पाँव के तले की चींटी को भी न होगा ।

नाउन—तुम उनसे इतना डरती काहे हो तुम्हें एतनी डर काहे की है ।

मालती—तूने कैसे जाना ! क्या मैंने कोई बात उठा रक्खी है कितनी बार समझाया खुशामद किया, भरसक बरजी भी, सब कर थकी पर किसी बात से कुछ काम न सरोकार । हम यह सब जानती हैं कि स्त्री के लिये पति ही परम देवता है चित्त से पति की भक्ति भी है पर क्या करें यातना नहीं सही जाती इससे जो मन में आता है सो कहनी अन-

कहना सब कहती हूँ पर वह परेतित तो दिन-रात उन पर चढ़ी रहती है उसके उतारने का तो कोई उपाय ही नहीं ।

नाउन—उपाय काहे कोई नहीं न ? ई का कहती हो ! तोहरे मैके के गउना मां भट्ठू लाला की बड़ी बखरी के पिछवाड़े जो भगुआ डफाली न रहन है ऊ बड़ा गुनी है तोहरे हामी भरै की बात है जो तू कहा तो हम ओह का बोलाय के सब ठीक कर देई ।

मालती—ना ठकुराइन ! यह तो मुझसे कभी न होगा । ई सब फेर में मैं नहीं पड़ा चाहती और इस सब से सिवाय हानि के लाभ कुछ भी नहीं है । ये सब बड़े ही ठग होते हैं । इनके फेर में पड़ना बड़ा ही धोखा खाना है अभी मेरे पड़ोसी मिट्ठू लाल ही के घर में न मालूम क्या हो गया होता !

नाउन—उनके घर का भवा रहा दीदी ?

मालती—यह बड़ी कथा है कौन मुँह पिरवावे ।

नाउन—नाहीं दीदी बताओ तोहरे पाँव पड़ी ।

मालती—मिट्ठूलाल की बहू का भी ऐसे ही करम फूट गया था उसका भी पति घर में नहीं रहता था उसकी माँ ने यह बात सुन कहीं से कुछ टोटका दवा के बहाने उसके पास भेज दिया कि वह दूध में मिला कर अपने पति को खिला देवे साँझ को जब उसका स्वामी ब्यालू करने आया तब दूध में वही औपधि छोड़ दूध का कटोरा थाली के पास रख दिया और आप वहीं खड़ी रही जब उसके पति ने और सब वस्तु भोजन कर दूध का कटोरा हाँथ में लिया तब उसने आय हाँथ पकड़ लिया और कहा “तुम दूध मत पिओ” ।

नाउन—ई काहे पहिले आप ही तो दूध पीने को दिया पीछे वही पीने को बरजा भो ?

मालती—न जानिये क्या उसके मन में आई जो दूध पीने को मना किया । जब उसके स्वामी ने इसका कारण पूछा तो कहने लगी ।

नाउन—क्या कहा ?

मालती—कहा कि “तुम घर में नहीं रहते इसी से हमने एक बशीकरन की दवा इसमें डाल तुम्हें दूध पीने को दिया है पर अब हमारे मन में आई कि क्या जाने हम जो चाहती हैं उसके विपरीत कहीं न हो । तुम प्रसन्न रहो हमारे भाग्य में जो बदा है सो होगा” ।

नाउन—तब उसके स्वामी ने क्या कहा ?

मालती—उसने कहा “हाँ तूने औषधि तक हमें बश करने के लिये कर डालो ! यह कौन दवा है भला देखे तो । अच्छा ! इस दूध को ढाँक रख कल देखेंगे” यह कह हाँथ मुँह धो चल दिया दूसरे दिन सबेरे आ कर दूध का कटोरा खोल कर जा देखा तो उसमें एक इतना (हाथ स इंगितकर) बड़ा कछुआ ।

नाउन—ऊँ : भला भवा कहीं जो दूध पी लेता और इतना बड़ा कछुआ पेट में पैदा हो जाता तो वह बेचारा मर ही जाता बशीकरन तो एक ओर रहा माँग का सेंदुर भो गवा रहा । जाय देव ऐसा बशीकरन तुम दीदा !

मालती—जो हो खाया तो नहीं पर औषधि करने का फल उस मिल गया ।

नाउन—क्या ?

मालती—उसका स्वामी बुद्धिमान था वह यह सब देख बोला “प्रिये ! हमने तुम्हें इतनी यातना दी । तौ भो तुम्हारा प्रेम

हम पर कुछ असर न कर सका। हा ! हम बड़े ही अधम हैं जो ऐसी पतिव्रता स्त्री को त्याग कर कुकर्म में आसक्त हो रहे हैं, अब हम आज से शपथ करते हैं कि साँझ भये पर कहीं न जाऊंगा” तब से फिर कोई बुरी बात उसकी नहीं सुनने में आई, हमार ऐसा भाग्य कहाँ जो वैसा हो (कुछ सोच कर) नाउन ठकुराइन ! हम तो अब जाती हैं तुम कल तक अभी रहो ।

नाउन—दीदी ! तुम्हारे उपकार जो हमसे कुछ हो सके तो हम एक दिन का पाँच दिन रह सकती हैं (शब्द मुन कर) ई का बाहेर का केवाड़ा बोला ।

मालती—हाँ अब आने का समय भया हम अब जा कर सोती हैं । तुम भी बाहर जा उस खिड़की के पास खड़ी हो देखो जो-जा चरित्र हो ।

नाउन—अच्छा—(मालती का शयन) । (प्रस्थान)

(रसिक लाल का प्रवेश)

रसिक०—क्या सो गई ? चलो अच्छा भया । हाय हाय से बचे । रात बहुत गई आहिस्ते-आहिस्ते हम भी चल कर सो रहें (कपड़ा और जूता उतारता है) ।

मालती—(शैया से थोड़ा उठ कर) अभी आय हो मालूम, कहाँ कमाई कमाते रहे अब तक ?

रसिक०—नहीं ! नहीं ! हमें तो आये बड़ी देर हुई ।

मालती—हाँ ! और क्या ! सच है ! तुम्हें आए तो बड़ी देर हुई तुमने समझा कि हम सो गई ?

रसिक०—नहीं नहीं क्या साँझ ही से सो जाओगी अभी तो कुछ इतनी रात भी नहीं गई ।

मालती—रात अधिक नहीं गई ? घड़ी की ओर तो देखो दो बजा कि नहीं ?

रसिक०—उः ऊ घड़ी राँग ।

मालती—घड़ी राँग काहे को है, तुम्हें जो रग चढ़ा है सो है ।

रसिक०—क्यों क्यों ? हम तो अब कहीं जाते भी नहीं, भाई
तुम्हारी कसम हमने अब सब बातें छोड़ दीं अब हमें क्यों
दोष देती हो ?

मालती—नहीं ! नहीं !! तुम्हें दोष कौन देता है ?

रसिक०—दोष की अब कौन सी बात रह गई है ? (इधर उधर
घूम) भाई बड़ी गरमी है ज़रा बाहर टहल आवें ।

मालती—ऐसे पूस माघ की शीत में भी तुम्हारे तन में ऐसी
गरमी व्यापी है ?

रसिक०—नहीं ! नहीं !! दिल्लगी नहीं । हम यथार्थ ही कहते हैं
आज बड़े महावीर का शृङ्गार था सो दर्शन को गये थे ।

मालती—महावीर का शृङ्गार क्या आज बुधवार को था ? तुम
किसे भुलावा देते हो ? भाँति-भाँति की कसम भी हमारे
ठगने केलिये खाते हो, हम तुम्हारे इस भुलावे की बात
में कभी आने वाली नहीं हैं, तुमने जैसा क्लेश हमें दिया
है और दे रहे हो देखना हम भी एक दिन तुम्हें भली-भाँति
सिखावेंगी ।

रसिक०—तू क्या कर सकती है ? जो तेरे मन में आवे सो करना,
चुप रह, घड़ियों से बकबाद नाधे है, हमें तो ऊँघ आती
है सोते हैं तू बर्राया कर पड़ी-पड़ी ।

(सोने को उद्यत होता है)

मालती—देखो ! तुम हमारा बिछौना मत छुओ, वहीं जाओ
जहां रात भर रहे, नहीं तो बाहर जा सो रहा, यह धोती
उतारे बिना तुम हमारा बिछौना मत छूना (रसिक लाल
सोने को होता है) हम कहे जाती हैं तुम नहीं मानते तो
हमी यहां से चली जाती हैं ।

(१०५)

(सत्वर गमन)

रासिक—नहीं ! नहीं !! अच्छा, लो तुम सोओ हमें छूना मत
और क्या करोगी..... (इत्यादि कहता हुआ मालती के
पीछे-पीछे जाता है) ।

पर्दा चौथा

(स्थान—मोहिनी वेश्या का घर)

(मोहिनी और राधा बल्लभ दास बैठे हैं पास बोतल और ग्लास
रक्खा है)

राधा बल्लभ दास—प्यारी ! तुम्हारी बोली जैसी मीठी है वैसे
ही तुम्हारी अकिल भी तेज है मानो छुरी की धार ।

मोहिनी—देख कहीं काट न डाले ।

रा०ब०दा०—क्या मुजायका है काट डालो, यह जान तुम पर
तसद्दुक है (बोतल से मद्य ग्लास में उड़ेल) वाह शायर
ने भी क्या ही कहा है—

शरा के बाब में मुझको तो कुछ कलाम नहीं ।

शराब यार पिलावे तो कुछ हराम नहीं ॥

अगर थोड़ी-सी मद्य होती तो पी कर मैं वजू करता ।

खुदा के सामने पैदा थोड़ी-सी आबरू करता ॥

सौदा शराब इश्क कि कहते थे हम न पी ।

आखिर मज्जा ने पाया अब उसके खुमार का ॥

जाम भर भर के मये होशरुबा दे सकी ।

आज इतनी तुम्हे तौफीक खुदा दे सकी ॥

(दोनों का मद्य पान)

भाई उस दिन तो बड़े ही दिक् हुये ।

मोहिनी—सो क्या ?

रा०ब०दा०—उस दिन जब हम तुम्हारे यहाँ से गये थे तब क़रीब ग्यारह बजने का टाइम था घण्टों तक दरवाज़ा खटखटाते रहे यहाँ तक कि चिल्लाते-चिल्लाते गला पड़ गया पर दरवाज़ा न खुला तब लाचार हो रात भर बाहर के बबूतरे पर पड़े रह गये पास ही नाबदान था मारे बूके नाक सड़ती रही। मच्छरसालों ने चोथ खाया नींद भी न पड़ी। देखो ये बड़े-बड़े दरोरे तमाम बदन भर में पड़े हुये हैं अब तक नहीं मिटे मानो शीतला निकली हों
(गात्र प्रदर्शन)

मोहिनी—तो बचा तुम खूब छकें ! अच्छा हुआ ।

रा०ब०दा०—उं: कुछ पर्वीह नहीं। लो जान साहब ! एक ग्लास तो और लो (दोनों का मद्य पान) और क्या ! क्या बात है ।

शेर ।

बाम तमासा करि रहा, विवस बारुनी सेय ।

भुक्ति हँसति हँसि-हँसि भुक्ति भुक्ति-भूक्ति हँसि-हँसि दय ॥

गम गलत करने को मैं पीता हूँ मय ।

इससे बेहतर गमरुबा देखी न शय ॥

एक दो जाम की खातिर न चुगा मुझ से आँख ।

ऐन मस्ती में तू मुझको न दगा दे सकी ॥

भाई तुम्हारे में बड़ा साहस है ।

मोहिनी—क्यों-क्यों मैंने ऐसा क्या किया ?

रा०ब०दा०—यहाँ कि जो तुम्हें रक्खे है वह यही समझता होगा कि तुम उसके सिवाय दूसरे को न जानती होगी पर तुम्हारा कुछ और ही रँग है। जो तुम्हें खाना, कपड़ा, खरच, पात सब कुछ देता है और सब तरह का धौधस उठाये है उस जुल दे हमारे साथ आमोद-प्रमोद करती हो ।

मोहिनी—अबे ! तू हम लोगों का रंग-ढंग क्या जान सकता है भड़ुए । हम लोगों का कामही यह है । जिससे राजी हों और जिस पर जी आ जाय उसको खिदमत में सब तरह से हाजिर हैं और जिस मुये से जी न मिलै वह चाहे कोट जतन करै उसका सब कुछ ऐंठ निबुआ नोन चटाय दें । हम लोगों ने कितनों ही को बना रक्खा है जैसा चाहती हैं वैसा नाच नचाती हैं ।

(नेपथ्य में किवाड़ा खटखटाने का शब्द)

रा०ब०दा०—(भय से चकित हो) यह कौन आया ?

मोहिनी—चुप चुप । और कौन होगा वही निगोड़ा आया होगा (चिल्ला कर) हाँ ! हाँ !! सुना है, खड़े रहो, आता हूँ, क्या पानी बरसता है जा इतना जल्दी कर रहे हो । महारा न मालूम कहाँ चला गया । हम से कह गया 'जाते हैं तेल लेने' । तेल भा न लाया बिगग भी बुझ रहा है और वह न जाने कहाँ सटक गया ।

(नेपथ्य में) महारा तो कहीं नहीं गया । सदर दरवाजा तो उसी ने खोला है आज देखते हैं साढ़ी तक का दरवाजा बन्द है । क्या रंग-ढंग मचा रक्खा है ।

मोहिनी—(विकृत स्वर से) रंग ढंग क्या मचा रक्खा है ! मरन है ।

रा०ब०दा०—मोहिनी ! मोहिनी !! तो अब हम कहाँ जायँ ? कहाँ लुकें ? अब हमारी क्या दशा होगी ? हम आज क्यों आये ? क्यों तू ने आज हमें आने को कहा था ? अब हमारे बचाव की कोई सूरत निकाल किसी तरह से ।

नेपथ्य में—दरवाजा क्यों नहीं खोल देतो कब तक हम यहाँ अधेरे में खड़े रहें ।

रा०ब०दा०—अब क्या करें कहाँ जायँ घबड़ाया हुआ इधर-उधर घूमता है ।

मोहिनी—(रा०ब०दा० से) तुम इतना घबड़ाते क्यों हो ? तुम्हें डर किसका है (चिल्ला कर) हाँ ! हाँ !! सुनती हैं खड़े रहो आती तो हैं । बाप रे बाप घोड़े पर चढ़े आये हैं क्या ! खड़े रहो सावन भादों की रात है, बादल छाये हैं, दिया भी बुझ गया, हाँथ पसारे भा नहीं सूझता । दरवाजा न बन्द कर रखें । कोई चोर-उबक्का आवे तो कैसी हां (रा०ब०दा० से) देखो ! एक काम करो अंगा कुरता उतार डालो उस खूँटी पर हमारी धोती और चादर रक्खो है उसे पहन लो ।

(नेपथ्य में) अरे तो दरवाजा कब खुलेगा ?

मोहिनी—(चिल्ला कर) आज कौन ऐसी कमाई कमा के आये हो जो थोड़ा-सा सबर नहीं किया जाता । दिया बुझ गया है जला ले । दियासलाई का वाक्स निगोड़ा भी न जानिये कहाँ हिराय गया घड़ियों से ढूढ़ रही हैं मिलता ही नहीं (रा०ब०दा० से) पहन लिया धोती ? चादर भी ओढ़ लो घूँघट काढ़ चुपचाप जा बैठो उस कोने में (दियासलाई हाथ में ले ऊँचे स्वर से) दियासलाई ऐसा मिहलाय गई है कि इतनी एक घिस डाला जलती ही नहीं सस्ती ढूँढ़ कर लाते हैं । इन्हें तो जिसमें पैसा बचै सो करना (दियासलाई जलाय मुँह से फूँक उसे बुझा देती है) मुई एक भी न जली घंटों से सिर मार रही हैं (रा०ब०दा०) हो गया सब; पलंग के पास जा बैठो । खबरदार ! सनकना नहीं और न किसी ओर ताकना, न कुछ बोलना (दिया जलाय बोतल ग्लास इत्यादि हटा दरवाजा खोलने जाती है और रसिक लाल के साथ फिर आती है) ।

मोहिनी—(रो रो कर) तुम जो हमें इतना चाहते हो खरच-पात सब देते हो यह देख इस मुहल्ले के लोगों की छाती फटती है। न जाने किस अधम पापी ने हमारी माँ से जा कहा है कि तुम्हारी बिटिया को हैजा हो गया है—सो माँ हमारी अधीरज हो न कुछ खाया न पिया भूखी, प्यासी, हफटाती, हफटाती आई हैं—आया चाहें हमारे सिवाय दूसरा उनके ओर है कौन। (हाँथ से दिखाय) हो देखो बैठी हैं।

रसिक लाल—(चकित हो) माँ आई हैं ? ऐसे बदजात लोग भी हैं ऐसों को मौत क्यों नहीं आती। न जाने यह कौन सा बदमारा आदमा था जिसने माँ को इतनी नकलीक दिया हम समझते हैं यह वही राधा बल्लभ होगा वह साला तीन चार दिन हुए तुम्हारा नाम लै लै हम से ठट्टेबाजी करता था और बहुत सा सख्त-सख्त बातें भी कही थी निश्चय यह उसी का काम है (सोंच कर) जरूर वही है। इस मुहल्ले में दूसरा कोई नहीं है जो हमसे ऐसी बदजाती करे।

मोहिनी—वही हो या दूसरा कोई, माँ हमारी दिन भर की भूखी हैं; जल तक नहीं पिया; हमारा छुआ खायँगी नहीं इसलिये की हम खानगी वेश्या हो गई है जाति हू गई धमं हू गया तुम सत्कुल हो तुम्हारा छुआ अलवन्ता खायँगी।

रसिक०—अच्छा ! हम लाये देते हैं खाने को उनके लिये।

मोहिनी—ऊ बिधवा हैं तीरथ-बरत सब कर आई हैं सिवाय पेड़ा के और कुछ न खायँगी।

रसिक०—अच्छा तो हम जाते हैं पेड़ा ही पेड़ा लावेंगे।

(प्रस्थान)

मोहिनी—(हँस कर रा० बा० से) माँ घूँघट खोलो एक गिलास और लो।

(दोनों का मद्य पान)

रा०ब०दा०—मोहिनी—तू बड़ी चालाक है। मूँजों को खूब ही चंगुल में फँसा रक्खा है।

मोहिनी—(मुसकिया कर) अभी तुमने देखा क्या है ! तानपूरा तब तक दुरुस्त नहीं होता जब तक अच्छी तरह उसका कान न मला जाय।

रा०ब०दा०—भाई, तू जो चाहे सो कर, हम तो अब यहाँ से भागते हैं। क्या जाने पकड़ जायँ तो बड़ी मुसीबत मेलना पड़ेगा।

मोहिनी—अबे ! इतना डरता क्या है, देख तो अभी हम उस की क्या-क्या दशा करती हैं। तुम्हें किसी ढंग से यहाँ से न निकालेंगे तो मुआ हम पर शक करेगा। लो, एक गिलास और तो छको। (दोनों का मद्य पान)

नेपथ्य में—दरवाजा फिर बन्द कर लिया।

रा०ब०दा०—हो आ गया (पूर्ववत् फिर वैसा ही बैठ जाता है)

मोहिनी—खड़े रहो आती हैं दरवाजा न बन्द कर लें तो क्या खुला छोड़ रक्जें (दरवाजा खोल फिर दोनों आते हैं)।

रसिक०—(पेड़ा मोहिनी के आंग रख कर) लो माँ को दो खायँ।

मोहिनी—माँ हमारे घड़े का पानो न पियेंगी एक लोटा पानी भी भर ला दो।

रसिक०—अच्छा (जाता है)।

मोहिनी—(रा०ब० के पास जा) माँ, लो पेड़ा खाओ।

रा०ब०दा०—पेड़ा कौन साला खाता है जा इस समय खाना चाहिये सो खायँगे। (दोनों का मद्य पान)

मोहिनी—अच्छा, तो इसे बाँध ले; लाया है तो क्या खराब जायगा। (रसिक लाल का प्रवेश)

मोहिनी—हमने नाहक तुमको इतना क्लेश दिया। पहिले से हमें कुछ सुध न रही आज एकादशी है माँ निर्जल-व्रत करती हैं

कुछ खायँगी नहीं और आज रात ही को जायँगी रहेंगी भी नहीं । पास ही उनके गाँव का एक आदमी रहता है उसके घर टिक रहेंगी कल भोर भये घर जायँगी ।

रसिक०—यह क्यों माँ से कहो अभी रहें दो एक दिन । थकी माँदी आई हैं कहाँ जायँगी ।

मोहिनी—यह सब हम पहिले ही कह चुकीं पर माँ राजी नहीं होतीं रहने को । हाँ, भले सुध आई तुमने उस दिन कहा था हम बनारस जाते हैं तुम्हारे लिये भूमड़ और करनफूल अवश्य लावेंगे । ऐसे-ऐसे छछन्द भी तुम्हें याद हैं इतनी दमबाजी तुमने किससे सीख रक्खी है । तीन दिन बीत गये खबर तक न ली हम जान गई तुमने और कहीं भी कुछ सट्टा-पट्टा लगा रक्खा है ।

रसिक०—नहीं हम सचमुच ही बनारस गये थे हम कभी तुमसे झूठ न बोलेंगे तुम्हारे सर की कसम हम भूमड़ और करनफूल तुम्हारे लिये लाये हैं । हमारा तो तन, मन, धन सब तुम्हारे लिये है तुम्हें छोड़ भला हम किसी दूसरे को रक्खेंगे । लो यह भूमड़ और करनफूल (देता है) ।

मोहिनी—(ले कर) हाँ गढ़न तो इसकी बहुत अच्छी है तनिक कुन्दन नहीं अच्छा किया गया चलो लाये सो लाये (धीरे से) माँ आई हैं और जाने भी कहती हैं रहेंगी भी नहीं । रातके ऐसे हा चली जायँ यह भी अच्छा नहीं लगता । भला और कुछ न हा सके तो एक धोता तो इन्हें जरूर चाहिये ।

रसिक०—हाँ, कहती तो ठीक हा पर इतनी जून लावेगा कौन ? महरा साला तो न जानिये कहाँ चला गया आने दा । साले को कल ही जवाब देंगे अच्छा तो हमी जायँ ।

मोहिनी—अच्छा तो फिर जाना ही है तो जल्दी जाओ । नौ बज गये हैं दूकान बन्द हो जायगी तो फिर कहाँ पावोगे ।

र० लाल—हाँ दे जाते तो हैं । (गया)

मोहिनी—क्यों बचा तुम डरते थे कैसी उस्तादी किया कि तुम्हें तनिक दाग भी न लगने पाया । हम लोग बाजार की बैठने वाली हैं जिसे हम चाहें उसके लिये प्राण तक दे डालें । सिर्फ जी आना चाहिये और जिसे हम बिगाड़ा चाहें उसका निस्तार भी कहीं नहीं है हमारे स्वभाव को नहीं जानता सुन :—

मन से करें और को ध्यान, दृग से करें और को मान ।

अन्य पुरुष से करे बिहार, तन से करे और को प्यार ॥

रा० व० दा०—हाँ ! यह तो ठोक है पर ऐसा ही एक दिन तुम हमको भोड़काओगी तुम्हारा कौन विश्वास “एक नारि जब दो से फँसी, जैसे सत्तर वैसे असी” ।

मोहिनी—(हँस कर) तुम्हारे ऊपर तो हम तन, मन, धन जो कुछ कहो सब बार डालें । तुम तो हमारी माँ हो तुम्हारे पेट से तो हम पैदा भई हैं हा, हा, हा, हाँ, (हँसती है) ।

नैपथ्य में—मोहिनी ! मोहिनी !! मोहिना !!!

रा० व० दा०—हो तुम्हारी माँ फिर आई (घूँघट काढ़ वेंसा हो बैठ जाता है) ।

मोहिनी—खड़े रहो आती हैं (द्वार खोलने जाती है रसिक लाल को साथ लिये आती है) ।

र० लाल—लो माँ को दो (थोड़ा ठहर) माँ कोरा कपड़ा ले कर जायँ इसमें हमारा जी खुश नहीं होता । माँ से कहो इसे पहन लें और खाली हाँथ उनको यहाँ से जाना भला नहीं होता । माँ तो ब्राह्मणी हैं न ?

मोहिनी—हाँ, माँ उपाध्याय के घर की है ।

र० लाल—तो उन्हें कुछ दक्षिणा पैलगी मेंट भी देना चाहिये (पाँच रुपया उसके पाँव तले धर साष्टांग प्रणाम करता है) ।

मोहिनी—अच्छा, तो तुम बरामदे में जाय बैठो तुम्हारे सामने माँ धोती कैसे पहिनै ।

र० लाल—अच्छा ! हम जाते हैं माँ से कहो पहिनै ।

(आड़ में हो जाता है)

मोहिनी—माँ, लो इसे पहिनो (कृत्रिम रुदन के स्वर से) माँ हमारी सुध बनाये रहना ? तुम्हें छोड़ अब और कौन दूसरा हमारे है । जब तक तुम जीती हो हमारे बाप का नाम तो बनाये हो । धोनी पहिनाय उसे बिदा करती है ।

र० लाल—(सामने आकर) ऐं यह कैसा हमारी बीनाई में क्या कुछ फक पड़ गया है । माँ, आईं यह तो सुना परमाँ जब नई धोती पहिनने लगीं तब छाया जो पड़ी सो तो कुछ और ही तरह की थी ।

मोहिनी—(कृत्रिम विस्मय पूर्वक) ऐं क्या कहा ! छाया जो देख पड़ी ... । धिक्कार है तुम्हे लाज नहीं आती । माँ हमारी बुढ़िया । मुँहजरे भाँकता था ।

र० लाल—नहीं-नहीं सो नहीं किन्तु छाया में मर्द का आकार था, छाया स्त्री और पुरुष की अलग-अलग होना चाहिये सो तो माँ की छाया में न था ।

मोहिनी—(अधिक क्रोध से) फिर वही कहे जाता है मुँहजरे निगोड़े तू ने हमारी माँ को भाँका था । तुम्हे शक है वह माँ न थीं कोई पुरुष था । हम साफ कहे देती हैं कि जो तुमको हमारे ऊपर शक है तो इसमें लल्लो-पत्तो की बात कौन सी है तुम्हको हमे रखना हो तो रख नहीं तो नहीं सही । “जैसा तुलसी राम से, वैसा राम तुलसी से ।” जैसा तू हमसे बर्तगा वैसा ही हम भी तेरे साथ बर्तंगी ।

सीधे से रहेगा तो सब सही नहीं तो मोहिनी तेरी नहीं तेरे बाप की नहीं ।

र० लाल—मोहिनी ! देखो क्रोध में मत आओ हमने साफ-साफ देखा दाल में जरूर कुछ काला है (क्रोध से) चुप रह बहुत बड़-बड़ मत कर हरामजादी हम सब समझ गये जैसा तू है वह भी जैसी तेरी माँ है सो भी हम जान गये ।

मोहिनी—जान गया तो क्या करेगा हमारा भड़ुये ! जा अपना मुँह काला कर यहाँ से दाढ़ीजार (भारती है और हाथ पकड़ निकालने लगती है) ।

र० लाल—यह क्या तेरा मकान है, भाड़ा मकान का तो हम देते हैं । चौकीदारी; टिकस देते हैं, पाइप का देते हैं, तेरा मकान है ? नमकहराम बेईमान हरामजादी ।

मोहिनी—तेरा मकान है ? हम बेईमान, नमकहराम हैं ? अच्छा तू ही रह यहाँ । हम अपनी जिनिस, पात सब लेकर चलो जाते हैं । अब एक छिन भी यहाँ न ठहरेंगी सिर खा गया निगोड़ा । (गाली देते निकल जाती है)

र० लाल—उफ़ हरामजादी ! मानो काली साँपिन कल्लेदराजी के बल छिपाया चाहती है । वह उसकी माँ हरगिज न थी कोई पुरुष अवश्य था (पलंग के नीचे देख) यह क्या बोतल और ग्लास है साले ने शराब पी है मालूम । ओः ऐसा धूर्त जो हमने समझा था वह किसी तरह भूठ न था हरामजादी की पिल्ली ने हमें कितना गालियाँ दी मार भी गई (छड़ी देख) यह छड़ी भी उसी की है गठरी के भीतर न समा सकी इससे छोड़ गई । ऐं इसमें कुछ लिखा है । क्या लिखा है देखें तो (दिया के सामने पढ़ता है) R. B. D. ऐं यह किसका नाम हुआ (सोंच कर) ओः उनी साले का नाम होगा ठीक है R. से राधा B. से बल्लभ D. से

दास । निश्चय उसी साले का नाम है वही था । क्या कहें पहिले से जानते होते तो साले को खूब छकाते । हा ! बड़े शरम की बात है जो कोई इस हाल को सुनेगा हमें बेशक गद्दा बनावेगा पर इस गद्देपन का कारण क्या है ? वही हरामजादी (सिर पर हाथ रख) यह क्या फूल आया है । खून भी बह रहा है । हरामजादी ने ऐसा मारा कि लहू निकल आया । हा धिक् ! अब हम संसार में क्या मुँह दिखलायेंगे । हा ? उस रक्तसी ने हम पर क्या मोहिनी डाल रखी थी कि हम ने अपना ब्याही सती स्त्री को कितना दुःख दिया । जब से हम उसे ब्याह के लाये सुख देना तो दूर रहा उससे मुँह भर बोले तक नहीं, उसी पतिव्रता, सती सावित्री ही के श्राप से निश्चय आज मेरी यह दशा हुई । हाय ! हम से किसी प्रकार का भी सुख उसको न मिला । स्त्री और पुरुष में जो बात होनी चाहिये वह दूर रही हमने पेट भर अन्न और तन ढोपने को कपड़ा तक उसे न दिया । हा । धिक्कार है मुझ अधम पापी को । मैं किस घोर नरक में ढकेला जाऊँगा, उसी दिन साँझ को कितना कष्ट उस सती को पहुँचाया । यहाँ ही आने के थोड़े ही कारण के लिये उस दिन बगारी नहीं किया; थोड़ा ठहरने के लिए कहा सो भी न किया वरन व्यर्थ को गाली गुफ्तार दिया और मारा भी । कमबख्त हरामजादी ! ऐसी बात बोलती थी मानो हमें छोड़ कभी किसी को सपने में भी नहीं देखा । हाय ! हमारे समान गद्दा दूसरा कौन होगा ! करनफूल मँस ले गई और उस बदमाश को देखो कि किस तरह से हमें उल्लू बना इस कुकर्म में ला पटका । निस्सदेह ऐसे हाँ चिकने मीठे मुँह वाले ठगों के फन्दे में फँस हमारे ही ऐसे कितने ही बेचारे अपने को बरबाद कर डालते हैं । हा !

दीहा

काम-अग्नि ज्वाला सुरति, इन्धन परम सनेह ।

होम करें सब नर जहाँ, धन अरु यौवन, गेह ॥

बहु फल फले कुलीन द्रुम, परउपकारक फूल !

भक्षित वेश्या-बिहँग सों; निष्फल होहिंसमूल ॥

हा ! अब मेरा किस प्रकार निस्तार होगा । निस्सन्देह उसी सती को कष्ट पहुँचाने ही के कारण मेरी आज यह दुर्दशा हुई । अब तो जैसे हो उस सती को प्रसन्न करने ही में मेरा कल्याण है । सच है जिसका जैसा काम होता है उसको वैसा ही परिणाम भी मिलता है । (प्रस्थान)

पाँचवाँ पदार्

(स्थान—मालती का शयन गृह)

(नाउन बैठी है और मालती उसका पुरुष वेप बना रही है)

नाउन—दीदी ! यह मूछ तुम्हें कैसे मिल गया ?

मालती—तैने तो देखा होगा कि हमारे घर के पिछवाड़े अहोरोँ का एक बाड़ा है उसमें दूसरी ओर जो घर है उसमें नाटक करने वालों की एक मण्डली उतरती है, उन लोगों को मूछ दाढी आदि का काम सदा पड़ता है न ?

नाउन—तो फिर तुम्हें ई कैसे मिल गया ?

मालती—जो लोग नाटक में हैं उनमें से एक का लड़का नित्य हमारे घर खेलने आया करता है, एक दिन वह यह मूछ लाया उसी से हमने इसे माँग लिया ।

नाउन—दीदी ! तुम बड़ी चतुरी हो; भाई हमें बड़ी लाज लागत है । काँछ खोंस, जोड़ा जामा पहिना, मूछ लगाय, पाग भी बाँधा । छी ! छी !! भाई तुम आज हमें का कर दिहो ।

मालती—(हँस कर) भलो तो लगतो हो ।, लाज किसकी है क्या कोई देखता है ? हाँ ! तनिक पगड़ी से चाहे लाज लगती हो ठीक जैसे गवदराय हों ।

नाउन—हाँ ! हम गवदराय मालूम हाती हैं, तनिक दर्पनी देवता मुँह देखो !

मालती—(दर्पनी देकर) लेव देखो न, क्या हम झूठ कहती हैं ?

नाउन—(दर्पनी में मुँह देखती है) वाह । ई ता हम मेहरिया से मनसवा बन गई हैं ह ह ह ह (हँसती है) हम जब बोलती हैं तो मूछ हिलती है, ह ह ह ह ! दीदा तुम ठीक क्यो एतनी जून तो हम गवदराय हो जान पड़ती हैं । मुँह जैसे जरा चूल्हा; आँख घुच्छू सी तंह पर ई पाग से तो अउरहू हँसी छूटत है ।

मालती—नहीं ! नहीं !! तेरा मुँह तो बहुत भला मालूम पड़ता है ।

नाउन—अच्छा ! भाई जो तुम्हें रुचे (माछां पर हाथ फेर हँसती है) तो फिर हमार नाव गावर्द्धन दास भट्टाचार महामहो-पध्या ह ह ह ह हँसती है) ।

मालती—दुर, भट्टाचार्य और दास, ब्राह्मणों के नाम के अन्त में कहीं दास पद लगाया जाता है ? अच्छा जाने दे अब उनके आने का समय हुआ सावधान हो जा, जिसमें चाल, ढाल, बातचीत में किसी भाँति खी न मालूम हो ।

नाउन—ये ही तो हमहू चाहित है, दीदी हमें बड़ी भय लागत है और हँसी हू छूटत है । हम का मरद को नाई चल सकव कि वैसी बोली बाल सकव ?

मालती—क्यों न सकेगी ? न हो पहिले से सीख रख ।

नाउन—अच्छा ! तो एक बार चल के देख लेई (पुरुष के समान चलती है) छिः ! भाई हमें बड़ी लाज लागत है (बैठ गई) ।

मालती—तो लाज से तो काम न सरेगा; तनक चलता सही ।

नाउन—(फिर चलता है) ऐसे चली ह ह ह ह (हँसती है) ।

मालती—भला हमारे साथ बातचीत कैसे करेगी ? पहिले दो एक बात बोल तो हम सुनै ।

नाउन—पहिले तोहसे हम ई पूछव कि तोहार पेट काहे फूला बा ? आज तुमने काहे की राटी खाई है ? बेरा की कि ज्वार की । तुम कबहूँ सावाँ का भात खाये हो ? एही तनह में और ।

मालती—दुर पागल जो पुढप पर स्त्री का अपने वश किया चाहता है वह क्या ऐसी हा ऐसी गवारपन की बात पूछता है ?

नाउन—ई काहे ऐसी बात पूछे में दाखु का है ? तो फिर और का पूछी ?

मालती—पागल कहाँ की, भई बड़ी पागल है । अरे ऐमे-ऐसे ठौर प्रेमालाप करना होता है ।

नाउन—प्रेमालाप कैसे करे होत है; भाई सो तो हम नाहीं जानित । एक बेर वोलो सुनी ।

मालती—अच्छा सुन, हमारे कंधे पर हाँथ रखकर कह “प्रिये ! जब से तुम्हारी रूप भाधुरी अपने नयनों से देखा तब से तन, मन, धन सब तुम्हें समर्पण कर दिया ।” बोल देखें बनता है कि नहीं ।

नाउन पिरये ! जब से तुम्हार रूप-मादुलि नेनों देखा तब से और का कही ।

मालती—(हँस कर) दुर अभागी, अच्छा तो एक एक शब्द कह । जब से.....इत्यादि

नाउन—पिरये ! जब से तुम्हारा रूप, मादुलि, देखा.....तब फिर का कही ? भूल गयन ।

मालती—हाँ ! हाँ !! मुँह में है पर कह नहीं सकती । अच्छा ! जाने दे । बोल—प्रिये ! तुम्हारे बिरहाग्नि से हमारा अन्तःकरण दग्ध हो रहा है, अपने वचनामृत के दान से शीतल करो ।

नाउन—प्रिये ! तुमार बेरागिन हमार अन्तःकरुना दध दध... तब का कही ? भाई हम तो भूल गइन ।

मालती—(खीझ कर) मर न और का ।

नाउन—दीदी ! हम ई भी न कहि सकव ।

मालती—अच्छा ! तो जाने दे । तू रूठ जा तो फिर तुझे कुछ न कहना पड़ेगा, केवल हूँ हूँ करना ।

नाउन—एही अच्छा है । पर भाई हमें हँसी आवत है ।

ह ह ह ह (हँसती है)

मालती—अरे यह क्या ! हँस के बिगाड़ेगी क्या ? (पैर की आहट सुन) चुप चुप देख वह आने हैं, हम बीड़ी साजतो है तू रूठ कर बैठ, पर सावधान रहना देख कहीं पहचान न लें ।

(खिन्न-बदन रसिक लाल का प्रवेश)

रसिक—(स्वगत) हा ! निस्संदेह उस दुष्टा के फेर में पड़ क्या क्या कुकर्म हमने नहीं कर डाले । हा ! उस नीच कुकर्मी राधावल्लभ के फेर में पड़ कैसा अपने को नष्ट कर डाला । सच है :—

अश्रेय से न वा कस्य विश्वासो दुर्जने जने ।”

दुर्जन पर विश्वास करने से किसको क्लेश नहीं होता । रात ढेर गई अवश्य वह सती सो गई होगी । हा ! इस बेचारा ने मेरे कारण कैसे-कैसे कष्ट उठाये (कुछ आहट पाकर) मालूम होता है अभी सोई नहीं जाग रही है

(देख कर) यह क्या ? जो अभी तक दीपक जल रहा है !
 ए यह सुगन्धि कैसी आ रही है ? सेज भी बहुत ही साफ
 और सुथरी बिछी हुई है । ऐं ! आज तो बड़े-बड़े सामान
 देख पड़ते हैं । चारों ओर सजा है और मालती भी वेष-
 भूषण किये पान की बीड़ी साज रही है । (कुछ सोंच कर)
 ऐं यह मामला क्या है ? कोई बात मेरे ध्यान में नहीं आ
 रही है । आज यह बात क्या है !! (खड़ा हो झरोखे से
 देखता है) ।

मालती—(स्वगत) अब किस प्रकार की बात करनी उचित है
 (प्रगट नाउन से) आप जो आये सो तो बड़ी ही कृपा की
 पर अब आप यहाँ क्यों बैठे हैं ? यह सेज अपने चरण-रज
 से पवित्र करिये । हमने इसे तुम्हारे ही लिये साज रक्खा
 है । इसे सफल करो शिर भुकाये क्यों बैठे हो, हमसे कौन
 सी ऐसी चूक बन पड़ी जो रूठ गये ?

रसिक—यह सब बात यह किससे कह रही है, कहीं इसने हमें
 देख तो नहीं लिया ? क्या कोई दूसरा पुरुष घर में है ? यह
 सब मामला क्या है !!

मालती—प्यारे । आज तुम म्लान बदन क्यों हो ? तुम्हें उदास
 देख हमें बड़ा दुःख होता है ।

नाउन—हटो, तुम हम से मत बालो ।

मालती—तुम्हारे पाँव पड़ती है क्षमा करो, क्रोध दूर करो ।

नाउन—चलो हटो, तुम हमें जैसा चाहती हो वह हम सब
 जानते हैं ।

मालती—ऐसी बात मत कहो तुम्हें तो हम अपना तन, मन, धन,
 जीवन, यौवन सब समर्पण कर चुकी हैं, तुमने आज आने
 को कहा था इस कारण बड़ा यतन कर यह सब सामान

हमने इकट्ठा किया है। लो ! यह पान खाओ। देखो, हमने इसमें कैसे-कैसे मसाले छोड़े हैं। लाओ ! हम खिला दें। (पास जा उसे पान खिला देतो है, और प्रणयपूर्वक उसे शैय्या पर बैठातो है तत्पश्चात् आप भी बैठ जाती है) क्यों ! क्यों ! तुम हमसे क्यों गुस्सा हो ? आज हमारा सब मनोरथ सफल हो गया। देखो, बड़ी मेहनत कर यह हार हमने तुम्हारे लिये गँथा है। लाओ ! यह हार तुम्हारे गले में डाल अपना जीवन सफल करें।

(हार पहिना देती है)

रसिक—(देख कर क्रोध से, स्वगत) पापीयसी। तेरी इतनी ढिठाई कि तू एक धींगरा बुला घर बैठाया। तेरी ऐसी कुप्रवृत्ति ? व्यर्थ ही इसे हम सती, सावित्री समझे हुये थे। सच है :—

“अनुराग परायत्ताः कुर्वते किञ्च योषितः”

किसी दूसरे के साथ गुप्त प्रेम में फँस स्त्रियाँ क्या-क्या नहीं कर डालतीं। हा। संसार में किसी स्त्री पर विश्वास करना और उसे भली समझना निरी मूर्खता है—

श्लोक ।

आवर्त्तः संशयानामविनय भवनं पत्तनं साहसानाम् ।
दोषाणां सन्निधानं कपट शतमयं क्षत्रमप्रत्ययानाम् ॥
स्वर्ग द्वारस्य विघ्नं नरक पुर मुखं सर्व माया करण्डम् ।
स्त्रीयन्त्रं केन सृष्टं विषममृतमयंप्राणिलोकस्य पाशः ॥

दुष्टे ! देख हम अभी तुम्हें और तेरे प्राणानाथ दोनों को मार डालते हैं, पहिले जाकर सांकर दे आवें—(सांकर लगा फिर आता है) थोड़ी देर पहिले यहीं खड़े रहें। देखें हम इसे पहिचान सकते हैं कि यह कौन आदमी है।

(देखने लगा)

नाउन—भला ! कदाचित् इस समय तुम्हारे स्वामी आ जाँय तो तुम क्या करो ?

मालती—आवें न डर किस बात की है, क्या उन्हें यह सब मालूम नहीं है ?

रसिक—(क्रोध से स्वगत) पापीयसी ! दुष्टे !! दुराचारिणो कुलटे !!! कहती है हम सब जानते हैं ।

नाउन—नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है कि वे जानते होते और कुछ न कहते ।

मालती—कहेंगे क्या ? पहिले वे अपने लच्छन तो देखें कि वे क्या करते हैं ?

नाउन—आप करते हैं तो क्या तुम्हें भी वैसा ही करने को कह दिया है ।

मालती—और नहीं तो क्या ? हम रात-दिन अकेले इतने बड़े घर में भूतिन-सी पड़ी रहती हैं और आप मनमाना जहाँ चाहें तहाँ रहें, अब भी जानने में कुछ बाका है ? अवश्य ही जानते होंगे, कुछ ऐसे निर्बोध भी तो नह। हैं, चलो यह सब जाने दो । आओ ! हम तुम दोनों मिल आनन्द करें ।

रसिक—(क्रोध से स्वगत) अब तो हमसे नहीं सहा जाता । ओह ! इतना बड़ा साहस कि एक धींगरा यह नित्य अपने यहाँ बुलाती है । निस्सदेह स्त्री मात्र का विश्वास संसार से उठ गया । चलें, इन दोनों ही को मार अपना कलेजा ठंडा करें (घर के भीतर जा प्रकाश) आज तो बड़ा रङ्ग-राव मचा रक्खा है (दोनों डर गईं और नाउन भाग कर घर के एक कोने में जाकर छिपती है) पापीयसी ! हमारे जीते ही जी इतना उधम मचा रक्खा है ?

मालती—क्यों ? क्यों ? भया क्या बताओ तो ?

रसिक—दुष्टे ! घर में किसे बुलाकर बैठाया है कहती है भया
क्या—भया क्या !

मालती—कोई नहीं, घर में तो दूसरा कोई आदमी नहीं है तुम्हें
कुछ भ्रम तो नहीं हो गया ?

रसिक—(क्रोध से) हाँ हमें भ्रम हो गया है, उसे कहाँ लुका रक्खा
है ! अब बस कहाँ बच कर जा सकता है ! देख हम
उसका शिर काट डालते हैं पीछे तेरी भो बोटी-बोटी काट
डालेंगे । तेरा इतना बड़ा साहस ! तू बड़ी पतिव्रता न
थी ? तूने तो पर पुरुष का मुख कभी नहीं देखा था ?

मालती—बस, अब चुप रहो बड़े बने हैं जो मुँह में आता है सो
कहे जा रहे हैं ।

रसिक—तू धींगरा बोला घर में बैठावे और हम कुछ कहें भी
नहीं ।

मालती—हमने तो किसी को भी नहीं बोलाया और जो बुला-
वेंगी भी तो तुम हमारा क्या करोगे ? तुम अपना लच्छन
तो देखो ।

रसिक—तो जैसा हम करते हैं (तू भी) वैसा हो करेगी, पापिनी ?

मालती—क्यों नहीं, क्या हमारा आदमी का चोला नहीं है ? या
कि हमारी देह लोहू माँस की नहीं है ? क्या हमारे मन
नहीं है ? क्या हमारे इन्द्रियाँ नहीं हैं ? क्या हमको सुख
दुख का ज्ञान नहीं है ? हम तो कोई चीज ही न ठहरें
और फिर तुम हमारा बड़ा सत्कार करते हो न !

रसिक—(क्रोध से) हम अभी तेरा शिर काट डालते हैं ।

मालती—(शिर झुका कर) लो काट न डालो, ऐसा हो तो फिर
क्या हम सब यातना ही से न छूट जाँय ?

रसिक—देख ! वही तो करते हैं, पहले तेरे सामने तेरे प्राणनाथ
का नाश करते हैं तिस पीछे भाँति-भाँति की यातना भोगा

तुम्हें भी मार डालेंगे। बता, वह धींगरा कहाँ गया ? (इधर उधर ढूँढ़ता है)

मालती—(डर कर) उसे तो तुम न मार सकोगे, हमी को मार डालो (आदि कहती हुई रसिक का हाथ थाम लेती है रसिक नाउन पर झपटता है और इसी लपटा-झपटी में नाउन का पुरुष वेप उतर जाता है।

रसिक—(आश्चर्यित हो) यह मामला क्या है ! यह तो खो है (देख और सोच कर) क्या यह वही नाईन तो नहीं है जो माधोपुर से आई है (नाउन से) यह क्या रे ?

नाउन—हाँ हम ही तो हन। दीदी ठकुराइन ई सब कदर्थना मौर किहिन है, दोहाई बबुआ जी कै, हमार यहमा कोउनौ दोखु नाहीं न, हमें छिमा करो (रसिक उसे छोड़ गदन नीची कर लेता है)

मालती—यह क्यों गर्दन क्यों नवा लिया ?

रसिक—मालती ! यह सब क्या वृतांत है ? हम तो तेरा कुछ भी अभिप्राय न समझ सके !

मालती—नाथ ! समझते हो हम व्यभिचारणी हैं हम निरी कुलटा ही हैं ! हमें कुल के कलंक की कुछ भय नहीं है। हम सदा कुकर्म ही किया करती हैं ? यह निश्चय समझो हम भ्रिथों के मन, में पूरे तौर से समाया हुआ है :
“इहा मुत्र च नारीणां परमा हि गतिः पतिः,
इस लोक और परलोक दोनों के लिये स्त्रियों को पति ही शरण है।

रसिक—यह नहीं, हम सब जानते हैं पर यह बात क्या थी ? आज तुमने यह सब क्या रचना रची है ? सो तो कहो।

मालती—पहले तुम बताओ यह सब देख तुम्हारा चित्त कैसा भया ?

रसिक—हमें तो ऐसा आवेश आया कि हम उसे नहीं कह सकते। पर पुरुष को घर में बैठा देख हमें ऐसा क्रोध हुआ कि उस क्रोध के आवेश में हम अपना शिर काट डालते तो कुछ आश्चर्य न था। यही जी चाहता था कि पेट में कटार भोंक लें। इस असार संसार से हमें ऐसी घृणा हुई कि इसी समय गृहस्थी त्याग, मूढ़ मुड़ाय सन्यासी हो जाँय, अधिक और क्या कहें—मालती ! हमारा मन ऐसा व्याकुल हुआ कि हम उसे वचन द्वारा नहीं प्रकाश कर सकते।

मालती—यही देखने को तो हमने यह सब रचना रची थी। नाथ ! तुम्हीं विचार देखो—तुम्हें तो ऐसा क्रोध हुआ, तुम तो बुद्धिमान हो पढ़े-लिखे भी हो, परमेश्वर ने तुम्हें विवेचना शक्ति दी है, तुम एक दीन! अबला को सूने घर में बहुत दिनों से एकाकिनी छोड़ आत्म सुखरत हो रहे हो तुम्हीं विचारो हमारे मन में कितना दुःख रहा होगा, मन में कितना दुःख पातो हैं, शरीर से कितनी यातना भोगती हैं, अन्तरात्मा अलग ही दुःख से व्याकुल हो उठता है। भला, तुम्हीं यह सब बातें सोचो इसी से हमने विचारा कि तुम्हें आज कुछ शिक्षा दें।

रसिक—मालती ! निसन्देह मेरे कारण तुम्हें बड़े-बड़े कष्ट भेलने पड़े। अब मैं विनयपूर्वक अपने सम्पूर्ण अपराधों की तुम से क्षमा चाहता हूँ और आज से शपथ करता हूँ कि सिवाय तुम्हारे किसी अन्य स्त्री की ओर दृष्टि न डालूँगा। आज तुमने केवल मुझको को यह शिक्षा देकर कुमार्ग पर जानेसे नहीं बचाया वरन् कितने ही इस शिक्षा से लाभ उठा सन्मार्ग पर चलने की चेष्टा करेंगे। धन्य

है ऐसी ही ऐसी सती-पतिव्रताओं के आचरण से सदा
से भारत का मुख देदीप्यमान सूर्य-सा तमतमा रहा है
तथापि परमात्मा से विनय है कि भरत मुनि का यह
वाक्य सफल हो :—

*होंहि एक पत्नीव्रत-रत सब भारत नर वर ।
तजहिं कुपथ, पथ गहहिं धर्म कर दुर्मति तज कर ॥
तजि वेश्या-संग-रमन करहिं श्रद्धा निज तिय पर ।
जासों सुधरहिं दशा दीन भारत कै सत्वर ॥
पटाक्षेप

॥ इति ॥

* इस पद्य का मेरे मित्र बा० महादेव प्रसाद सेठ जी ने रचा है
जिसके लिये उन्हें विशेष धन्यवाद है ।

